RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 57 अंक : 03 प्रकाशन तिथि : 25 फरवरी कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 मार्च, 2020

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

वीरवर कुँवर सिंह पंवार

बिहार की शानः स्वतंत्रता सेनानी

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान
फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़
आजाद सिंह राठौड़
सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड
हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 मार्च, 2020

वर्ष : 57 अंक-03

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

समाचार संक्षेप		04
चलता रहे मेरा संघ	श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	श्री चैनसिंह बैठवास	07
मेरी साधना	प्रो. रूपसिंह लिम्बड़ी	11
जीवन्मुक्ति की प्राप्ति	स्वामी यतीश्वरानन्द	15
मकड़ी अपने ही जाल में उलझ रही है	आचार्य महाप्रज्ञ	18
बिहार की शान : वीरवर कुँवरसिंह पंवार	श्री गोपालसिंह राठौड़	19
क्षात्रधर्म समाज की एक अनिवार्यता	श्री बाबूसिंह डांगरी	21
विचार-संहिता (त्रिपञ्चाशत् लहरी)	श्री विचारक	23
महालक्ष्मी मन्दिर-कोल्हापुर	स्वामी गोपाल आनन्द बाबा	24
भारतीय संस्कृति की श्रद्धास्पद........	डॉ. रमाशंकर पाण्डेय	26
नवरात्रि-शक्ति उपासना पर्व	संकलित	27
एक हाथ की ताली	संकलित	29
दिखावा घर का दिवाला	श्री अमरसिंह अकली	31
अपनी बात		33

समाचार संक्षेप

संस्थापक की जयन्ती :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के रूप में हमें हमारे जीवन को सार्थक बनाने की राह प्रदान की पूज्य तनसिंहजी ने। अत: उनका स्मरण तो सदैव रहता ही है, पर उनकी जयन्ती के अवसर पर उत्साहपूर्ण स्मृति का होना स्वाभाविक है। इसीलिए अनेक स्थानों पर उनकी जयन्ती मनाकर उनके प्रति श्रद्धा प्रकट की जाती है, उनके जीवन से प्रेरणा लेकर उन्हीं के बताये मार्ग पर चलने के संकल्प को और अधिक दृढ़ता प्रदान की जाती है।

क्षात्रधर्म के मार्ग से पथविचलित हो जाने के कारण समाज की मानसिकता में विकृतियाँ पनप चुकी थी। स्वार्थ की भावना बढ गई थी। अहं ने अपने तेवर दिखाए और समाज बिखर कर अपनी शक्ति खो चुका था। समाज की ऐसी स्थिति देखकर क्षात्रधर्म की पुनर्स्थापना की जाने की परम आवश्यकता थी। क्योंकि क्षात्रशक्ति का बलवान बनना क्षत्रिय समाज के लिये ही नहीं प्राणीमात्र के लिये आवश्यक रूप से उपयोगी है। इसलिए क्षत्रिय को अपने कर्तव्य व उत्तरदायित्व का बोध कराने, धर्म विमुख क्षत्रिय को अपने स्वधर्म पर आरूढ़ करने, तमोगुण से आक्रान्त समाज में सतोगुण का संचार कर सत्य पथ पर चलाने, पथ विचलित कौम को राह दिखाने हेतु ईश कृपा से पू. तनसिंहजी मार्गदर्शक बनकर आए, सामूहिक संस्कारमयी कर्म प्रणाली अपना कर संघ के माध्यम से बालकों को सत्य पथ पर चलाना प्रारम्भ किया।

एक व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान उसके कर्तव्य से होती है और कर्तव्य निर्भर करता है सुविचार प्रवाह से। क्षत्रिय युवक संघ का साहित्य ऐसा ही साहित्य है जो मानव को भगवान बनाने में सक्षम है। पूज्य तनसिंहजी ने साहित्य की हर विधा यथा गद्य, पद्य, गीत, कहानी, गद्यगीत, संस्मरण, डायरी आदि में सृजन किया। लेखक की विशेषता यही होती है कि जो लिखा गया है वह पाठकों पर प्रभाव डालता है। यदि साहित्य पथ विचलित मानव को सही रास्ता दिखाने, उसका मार्गदर्शन करने तथा सर्वजन हिताय जीवन जीने की शिक्षा नहीं देता हो तो वह व्यर्थ है। पूज्य तनसिंहजी ने अपने साहित्य में संघ के जीवन दर्शन को उजागर किया है। आदर्श जीवन के उच्चतम मूल्यों का बोध करवाकर उन्हें अपनाने में सहायक है उनका साहित्य।

श्रम उनके जीवन का अनिवार्य अंग था। जिन्होंने उनको नजदीक से देखा है, उन्होंने देखा है कि श्रमहीन जीवन मृत्यु के समान है। उन्होंने क्षत्रियों की यह जीवनशैली सिद्ध की कि वृद्धावस्था तक यदि युद्ध में मृत्यु का अवसर न भी मिले तो खाट पर पड़े-पड़े तो ना मरें। शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद भी वे अक्सर 16-18 घण्टे प्रतिदिन कार्यों में व्यस्त रहते थे।

25 जनवरी को पूज्यश्री की जयन्ती अनेक स्थानों पर मनाई गई। कहीं प्रांत स्तर पर तो कहीं मंडल स्तर पर। कुछ जगह शाखा स्तर पर भी मनाई गई तो अनेक जगहों पर बड़े रूप में भी जयन्ती मनाई गई। पूज्य तनसिंहजी का जीवन परिचय देने कहीं केन्द्रीय कार्यकारी, कहीं संभाग प्रमुख, कहीं प्रांतप्रमुख तो कहीं वरिष्ठ स्वयंसेवक पहुँचे। जयपुर में संघशक्ति प्रांगण में आयोजित जयंती कार्यक्रम में संघप्रमुखश्री का सान्निध्य प्राप्त हुआ। बिना रुके श्रेष्ठता की ओर अग्रसर बने रहने की पू. तनसिंहजी की जीवनशैली से प्रेरणा लेकर अपनाने पर जोर दिया गया। दैवीय और दानवी, दोनों ही प्रकार की भावनाएँ हमारे अन्दर रहती हैं। हमारे देवत्व को जगाने के लिये हमें मार्ग बताया गया है उस पर बिना रुकावट के चलते रहें। जिनसे हमने कुछ उपयोगी प्राप्त किया है, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हमारा दायित्व बनता है। इसलिए जयन्ती मनाते हैं। परन्तु पूज्य तनसिंहजी के जीवन का सार तो कहता है कि उनके बताए मार्ग पर लगनपूर्ण तत्परता से बढकर अपना जीवन सार्थक बनाएँ, यही उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना है। ऐसा जागृति के बिना सम्भव नहीं है। जागने पर व्यक्ति उठता है, चलता है, लक्ष्य के समीप जाता है, लक्ष्य की बात सुनता है, देखता है, समझता है, मनन करता है, बोध करता है। संघ ऐसी ही जागृति की बात करता है। संघ मुक्ति का मार्ग है, पर बिना रुके निरंतर चलना आवश्यक है।

चलता रहे मेरा संघ

{उच्च प्रशिक्षण शिविर गनोड़ा (बांसवाड़ा) में 23 मई, 2019 को संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी द्वारा उद्‌बोधित प्रभात संदेश }

श्रीमद्‌भगवद्‌ गीता भगवान श्रीकृष्ण के मुख से नि:सृत वाणी है। इसके बारे में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि मैं तुम्हें वह गोपनीय ज्ञान, रहस्यमयी ज्ञान तुमको सुना रहा हूँ, जो सबसे पहले सृष्टि के आदि में मैंने सूर्य को सुनाया था। सृष्टि के आदि में भगवान कृष्ण तो नहीं थे, इस रूप में नहीं थे लेकिन वह संदेश देने वाले भगवान ही थे। आगे कहते हैं कि सूर्य से वह ज्ञान उनके पुत्र मनु को सुनाया गया। मनु ने यह योगशास्त्र सुना। मनु से वह इक्ष्वाकु तक पहुँचा। फिर राजर्षियों ने वह ज्ञान प्राप्त किया। फिर धीरे-धीरे वह ज्ञान लोप हो गया। नष्ट नहीं हुआ, लोप हो गया अर्थात्‌ कहीं दिखाई नहीं देता। जिस प्रकार सूर्यास्त के बाद सूर्य दिखाई नहीं देता पर वह नष्ट नहीं हुआ है, अस्तित्व है पर दिखाई नहीं दे रहा है। वह पूर्वजों का ज्ञान लुप्त हो गया था, जो कि संसार के लिये आवश्यक था। भगवान की वह वाणी राजर्षियों तक आते-आते लुप्त हो गई। उसी ज्ञान को हे अर्जुन! मैं तुमको सुना रहा हूँ। इस भगवान की वाणी को नि:सृत हुए पाँच हजार दौ सो वर्ष से ऊपर हो गया। वह ज्ञान भी धीरे-धीरे लोप होता जा रहा था। इस रूप में, उसी बात को कई महात्माओं ने, ऋषियों ने सुना। उस लोप हुए ज्ञान को संसार को दिया। वही लुप्त प्राय: ज्ञान पूज्य तनसिंहजी ने श्री क्षत्रिय युवक संघ के माध्यम से दिया। यह अविनाशी योग है। यह योग कभी नष्ट नहीं होने वाला है।

हमको गीता में बताये गये कर्मयोग, जिसको निष्काम कर्मयोग कह सकते हैं, के सम्बन्ध में विचार करना है। बिना कामना के कर्म। साधारणतया यही समझते हैं कि किसी कामना के बिना तो कोई कर्म होता ही नहीं। इसको और अधिक स्पष्ट करने के लिये कहते हैं-फलाशक्ति रहित कर्म। कर्म करें पर फल के प्रति आसक्ति न हो कि यह परिणाम आना ही चाहिए। यदि ऐसी आसक्ति रखते हैं और परिणाम यदि अनुकूल नहीं आता है तो निराशा हमें घेर लेगी। भगवान की कही वाणी है कि हमारा कर्म करने में ही अधिकार है। बस कर्म करें। निष्काम कर्म करते हैं, फल की आसक्ति रहित कर्म करते हैं तो भी फल तो निश्चित मिलता ही है। कोई कर्म ऐसा है ही नहीं जिसका फल नहीं मिलता पर मैं चाहूं वैसा ही फल मिले, यह आसक्ति है इसे छोड़ना है। जो कर्म करता है उस कर्ता को ही फल मिलता है। कोई समाज या जाति कोई कर्म करती है तो समाज या जाति को फल मिलता है। राष्ट्र यदि कोई कर्म करता है तो उस कर्म का फल राष्ट्र को मिलता है। संदेश है कि कर्म का फल निश्चित है तो कर्म फल के बारे में क्यों चिन्ता करें, क्यों आसक्ति रखें। आसक्ति होती है कामना के कारण। कामना पूरी नहीं होती है तो निराशा आती है, क्रोध आता है। कामनाएँ ही न रखें तो फल तो मिलेगा ही। जब हम निष्काम कर्म करेंगे, आसक्ति से रहित कर्म करेंगे तो उससे एक तप हमारे जीवन में आएगा। आप तपस्वी बन जाएंगे। आपको ऊर्जा मिलेगी, आपको ओज (तेज) मिलेगा। निष्काम कर्म करने का संकल्प जाग्रत करें।

यहाँ आपको छोटी-छोटी बातें बताई जाती हैं। जो भी वस्तु, सुविधा उपलब्ध है वह केवल मेरे लिये नहीं है। इसलिए उसका उपयोग न करें। उसका त्याग करें। इस त्याग का जो फल मिलता है वह उसका उपयोग करने के फल से कहीं अधिक अच्छा मिलता है। जैसे कुण्डली जागरण के बाद उसकी यात्रा में अनेक पड़ाव आते हैं। उन पड़ावों में अनेक सिद्धियाँ मिलती हैं। सिद्धि को यदि भोगने लग गये तो आगे की सिद्धि नहीं मिलेगी, यह तो निश्चित ही है, लेकिन आपका तप भी नष्ट हो जाएगा। जो आपने अपने आप पर संयम लगाया था, अपने आपको मर्यादित बनाया था, बांध लिया था अपने आपको, उस पर कायम

नहीं रहे तो फूलकर कहीं भी गिर जाएंगे। आप यहाँ से जाएंगे, अच्छी बातें लेकर जाएंगे, आपके मन में गौरव होने वाली बातें लेकर जाएंगे। संसार में ऐसी शिक्षा कहाँ मिलती है? हम एक अच्छी शिक्षा लेकर जा रहे हैं संसार में। इस बात का यदि गर्व हो जाए कि संसार के लोग क्या हैं? तो हमारी प्रगति रुक जाएगी। आप संघ के स्वयंसेवक हैं, संघ अच्छा शिक्षण देता है, आप अच्छा काम करते हैं, समाज का काम करते हैं। समाज के हित का चिंतन करते हैं, तो लोग आपकी बात सुनेंगे। तब आप में अहंकार आ जाए कि देखो मैं कितना योग्य हो गया हूँ तो प्रगति को खतरा है। यह योग्यता आपकी नहीं है, संघ की है। इसलिए यदि ऐसा भाव आता हो तो उसे भगवान को समर्पित कर दें। कर्म का फल मिले, उसका त्याग कर दें। उस सिद्धि को भोगना नहीं है। त्याग करने पर और तेजस्वी तपस्वी बनते हैं, और ऊर्जा मिलती है। ज्यों-ज्यों सिद्धियाँ मिलती जाएगी, कहीं भी रुक गए तो जीवन में सड़ांध आ जाएगी। धुआं छा जाएगा अन्धकार का, अहंकार का और आप सोचेंगे मेरी बात को लोग सुनते क्यों नहीं हैं। पहले बहुत सुनते थे। मेरा कहना मेरे बच्चे क्यों नहीं मानते? मेरी घरवाली क्यों नहीं मानती। मेरे घर वाले क्यों नहीं मानते? कारण बाहर नहीं है, कारण स्वयं में है।

कर्मफल के त्याग को भी छोड़ दें। त्याग को भोगें नहीं। भोगने से चीज नष्ट होती है। कर्मफल के त्याग का फल छोड़ें, कर्म करते रहें। यह तपस्या है। अन्त समय में जो उत्कृष्ट स्थिति है, वहाँ पहुँचने के बाद अहंकार अपने आप में ही नष्ट हो जाएगा। उस समय आपको कुछ करने की आवश्यकता नहीं, लेकिन प्रारम्भ में सावधान रहने की पूरी आवश्यकता है। मैं जिस तेज की बात कर रहा हूँ उस दिव्य तेज से निश्चित रूप से आपको उपलब्धि होगी। बहुत अच्छी बातों की जानकारी होगी, लेकिन अहंकार न आ जाए कि यह उपलब्धि मेरी है। यह आपने क्षत्रिय युवक संघ से प्राप्त किया है, परमेश्वर की कृपा हुई है। विनयपूर्वक उस फल को इन्कार करना चाहिए, उसका भोग नहीं करना चाहिए। जितना भोग कम करेंगे, उतने ही हम तपस्वी बनते जाएंगे। उतना ही संसार के लिये प्रकाश स्तम्भ बनेंगे। उसके पीछे विवश होकर परवश होकर संसार को चलना ही पड़ेगा। मैं दृढ़ भावना के साथ, विश्वास के साथ कहता हूँ कि हमारी साधना जैसे बताई जा रही है, वैसे ही की जाती रहे तो इस संसार को हमारी बात स्वीकार करनी ही पड़ेगी। अहंकार नहीं है, चुनौती नहीं है, यह फल निश्चित है। लेकिन जहाँ भी हम थोड़े बहुत ढीले हो गए, वहाँ हमारी प्रगति रुक जाएगी। क्षत्रिय युवक संघ का नुकसान हो जाएगा। क्षत्रिय युवक संघ के उद्देश्य में कमजोरी आ जाएगी। साधना में कमजोरी आ जाएगी। लक्ष्य तक पहुँच नहीं पाएंगे, लक्ष्य बहुत दूर हो जाएगा। तो अपने आप पर भी कृपा करें, क्षत्रिय युवक संघ पर भी कृपा करें। मानव जाति पर कृपा करें, राष्ट्र पर कृपा करें। सदैव इस बात का ध्यान रखें कि मैं कहीं गिर तो नहीं रहा हूँ। मेरे गिरने से संसार गिर जाएगा। मैं रुकता हूँ तो संसार रुकता है। इस भाव के साथ आज के मंगल प्रभात में क्षत्रिय युवक संघ का हमारे लिये यही मंगल संदेश है।

✻

हमारी और परम्परागत साधना में एक मूल भेद है। परम्परागत साधना के अनुसार आत्मा और परमात्मा के बीच किसी हस्ती को स्वीकार नहीं किया है, जबकि हमारी साधना कहती है, कि व्यष्टि और परमेष्टि के बीच एक कड़ी समष्टि भी है। उस समष्टि का स्पष्टीकरण नहीं होता और वह जब तक हमारे व्यष्टिगत जीवन में नहीं आएगी, तब तक आज के युग में आध्यात्मिक साधना एकांगीण बनकर जनसमूह को आकृष्ट नहीं कर सकती।

- पू. तनसिंहजी

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

पूज्यश्री ने बिछुड़े हुओं को पुनः मिलाने के लिये मेले लगाये। इन मेलों में असंख्य लोग आये, वादों में बन्धे, भरोसा देकर एक कुटुम्ब के हो के साथ रहने लगे, पर इनमें से कुछ लोगों को यह कुटुम्ब रास नहीं आया और वो इस कुटुम्ब को अलविदा कह चलते बने। साथ आये, इतने दिन साथ रहे, साथ खेले, साथ खाये-पिये, मोज-मस्ती, हँसी-मजाक की और फिर अचानक साथ छोड़ चले गये तो दुःख होना ही था, उनकी याद आनी ही थी, उनका अभाव खटकना ही था। साथ के वो दिन याद आते ही उनकी स्मृतियाँ दिल और दिमाग में छा जाया करती हैं। इस तरह बीच राह मझधार में छोड़कर चले जाने वालों के सम्बन्ध में पूज्यश्री तनसिंहजी ने कहा –

''आज तुम्हारी कुछ स्मृतियाँ शेष हैं। बड़ी मधुर हैं वे! पर साथ ही तुम्हारे अभाव के कारण जो टीस है, वह भुलाये नहीं भूली जाती। मुझे अफसोस इस बात का है, तुमने कुटुम्ब को केवल धर्मशाला समझा। जब जी आया, आ गए, जब जी चाहा, चले गए। अपनी सुविधा का ही तो ख्याल हुआ, वर्ना यदि मेरी सुविधा की बात करते, तो मेरे जीवन में जब कठिन क्षण आए तब तुम क्यों नहीं रहे? क्योंकि तुम मेरे कौटुम्बीय नहीं, मात्र मेहमान थे और मेहमान ही रहना चाहते थे।''

साधारणतया हर व्यक्ति महत्त्वाकांक्षी होता है और उस महत्त्वाकांक्षा में उनकी कोई न कोई चाह छिपी रहती है। चाह ऐश-आराम की भी हो सकती है, सुख-शान्ति की भी हो सकती है, कुछ पाने की तो, कुछ खोजने की भी हो सकती है। अनेकों चाह में वह अपनी इच्छित चाह को पाने के लिये जब ललचाता है तो उसे पाने के लिये प्रयासरत होता है, पर जरूरी नहीं कि उनकी वह चाह पूरी हो। कभी-कभी निराश भी होना पड़ता है, उपेक्षित होकर लौटना भी पड़ता है। ऐसे अनेकों व्यक्ति जिनकी श्री क्षत्रिय युवक संघ में कोई रुचि नहीं थी, उनकी चाह तो कोई और थी, उनका आकर्षण केन्द्र कोई और था, पर वहाँ उन्हें कहीं तवज्जोह नहीं मिली, वहाँ से जब ठुकरा दिये गये और कोई जगह मिली नहीं, तो संघ की ओर उन्मुख हुए। संघ में आने पर उन्हें तवज्जोह मिली, उन्हें यहाँ मान और सम्मान मिला, उनकी यहाँ आने पर इज्जत भी बढी, पर इसे वे पचा नहीं पाये। क्योंकि वे संघ के होके तो आये नहीं, वे तो अपनी चाह के पीछे भागते आये थे। यहाँ मान, सम्मान व इज्जत क्या मिली, उन्हें तो अहंकार हो गया। अन्यों की अपेक्षा वे अपने आपको कुछ ज्यादा ही तवज्जोह व महत्त्व देने लग गये। अन्य लोगों से अपना कद बड़ा होने का उन्हें भ्रम हो गया, इसलिए उन्हें लगा यह जगह उनके लिये बेहतर नहीं और वे संघ कुटुम्ब को छोड़ मेहमान की तरह चलते बने। ऐसे लोग मतलबी होते हैं। जब तक मतलब सधता है तब तक अपने बनकर साथ बने रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा –

''तुम जब कभी आए हो, संसार के कोलाहल से परेशान होकर एकांत खोजने की दृष्टि से आये। मेरे घर की नीरवता तुम्हें भा गई और तुम ठहर गए। दुनिया के वैभव और सुख ने तुम्हें ठुकरा दिया था, इसलिए मेरी कंगाली और कष्ट सहिष्णुता ने तुम्हें आकृष्ट किया। जब तक तुम यहाँ रहे, मेरे अकिंचन धन से ही तुम धनवान बन गये और धनवान बनते ही तुमने सोचा, तुम साधरण नहीं हो और चल पड़े। मेरी अकिंचनता, नीरवता, तपस्या और साधन लघुता जो कल तुम्हें आकृष्ट करती थी, तुम्हारे उकताने का वही कारण बन गई, क्योंकि तुम्हारे पास मेहमान का दिल था, कौटुम्बीय का नहीं।''

कुछ लोग रईसजादों, अमीरों से प्रभावित होकर उनकी ओर आकृष्ट होते हैं, पर वे बड़े लोग जब उन्हें तवज्जोह नहीं देते तो वहाँ से उपेक्षित होकर वहाँ से पलायन कर जाते हैं। कुछ ऐसे ही लोग रईसजादों व अमीरों से उपेक्षित होकर श्री क्षत्रिय युवक संघ की ओर इस उम्मीद से आकृष्ट हुए कि यहाँ तवज्जोह मिलेगी, सम्मान बढेगा और अपेक्षाएँ भी पूरी होगी। यदि महलों में इन्हें तवज्जोह मिल जाती तो ये कभी श्री क्षत्रिय युवक संघ में नहीं आते। क्योंकि संघ का जीवन संघर्षमय व कठिनाइयों से भरा हुआ है। इसमें पग-पग पर कांटे हैं। संघ की राह बड़ी कष्टप्रद है, जो कांटों से भरी है, जहाँ कौन आना चाहेगा? संघ में तो वे ही आये हैं जिन्हें महलों ने ठुकरा दिया। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा -

''हम साधारण लोगों के पास न तो महल होते हैं, और न आमोद-प्रमोद के साधन। दो जूण रोटी भी आनन्द से नहीं खा सकते। सुबह साढे चार बजे से रात के दस बजे तक लगातार अपने काम में लगे रहना और उसी परिश्रम से क्लान्त होकर न खा सकने के कारण बासी ही छोड़कर सो जाना, यही तो है, मेरे इस जीवन का सार! लेकिन तुम जब कभी आए हो, महलों ने तुम्हें ठुकरा दिया था। आज तक महल जिनका स्वागत कर रहे हैं, वे कभी मेरे मेहमान नहीं बने। प्रसादों में रहने वालों ने जंगलों की राख छानना बेकार और कष्टप्रद समझा, इसलिए वे नहीं आये, पर तुम इसलिए आए कि पेड़ों के नीचे मेरे आवास को तुमने महल समझा क्योंकि इससे बढकर तुम्हारे जीवन में और कोई महल ही नहीं था।''

श्री क्षत्रिय युवक संघ में अनेकों लोग आये और आते ही जा रहे हैं। आने वालों में कुछ लोगों ने इसे अपना कुटुम्ब समझा और इसी में रह गये, इसी में रिलमिल गये। आने वालों में कुछ लोग ऐसे भी थे जो इस कुटुम्ब के कुटुम्बी नहीं बन पाये, इसलिए वे इस कुटुम्ब में जगह नहीं बना पाये और मेहमान की तरह इस कुटुम्ब को छोड़ चलते बने। इस तरह श्री क्षत्रिय युवक संघ में आने और जाने का सिलसिला चलता रहा है। आज तक संघ से जाने वाले अपने ही कारण से गये हैं, पर जाने वालों में अधिकांश लोग ऐसे हैं जो अपने जाने का दोष पूज्य श्री तनसिंहजी को ही दे जाते रहे हैं। स्वयं को तो दूध का धुला घोषित कर संघ को ही बुरा-भला कह चलते बने हैं। उनकी इस हरकत से पूज्य श्री तनसिंहजी को बड़ा दु:ख होता था। वे व्यक्ति रूप में तो दिये गये दोष को सहन कर लेते, पर अपने इस संघ कुटुम्ब को कोई दोष दे, उसे वे बर्दाश्त नहीं कर सकते। वे अपने इस संघ कुटुम्ब पर कोई कलंक नहीं रखना चाहते थे। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा -

''मुझे कुछ लोग कहते हैं, जाने वालों के कारण तुम हो। तुम्हारे भीतर कोई ऐसी कमी है, जिसे देखकर लोग जाते हैं, वरना किसकी हिम्मत, जो किसी को छोड़कर चला जाए। मैं जब आत्म-चिंतन करता हूँ, तो लगता है, कमियों की तो मैं खान हूँ। गुणों को दीपक लेकर मैंने ढूंढने की चेष्टा की, पर मुझे तो अपने भीतर एक भी गुण नहीं दिखाई दिया। मेरे पास क्या गुण हो सकता है? मेरा स्वभाव ही मांगना है, तो शेष क्या रहा? इसलिए मेरे मेहमान! मैं तुमसे ही भीख माँगता हूँ, मुझे कुछ सिखा सको तो सिखाओ। केवल शिक्षा देने के बहाने ही एक बार आ जाओ, पर मेरे इस कलंक को धो जाओ, कि तुम मेरी वजह से नहीं, अपनी ही मजबूरियों के कारण गए हो। शायद तुम यह सोचते होगे कि मैं अपना यह कलंक क्यों धोना चाहता हूँ? क्या इस प्रकार अपने आपको सर्वोपरि और सर्वातिक्रमणकारी सिद्ध करना चाहता हूँ। नहीं! मेरे मेहमान! ऐसी बात नहीं। मेरा यह कुटुम्ब मुझे बहुत प्रिय है। मैं उस पर किसी प्रकार का कलंक नहीं रखना चाहता। व्यक्ति रूप में तुम चाहे जितना दोष दे दो, लेकिन मेरे समूह रूप को तुम दोषित न करो, क्योंकि उसके लिये तो मैंने यह सब कुछ किया है। मैं चाहता हूँ, मेरा कुटुम्ब दोष रहित, कलंक रहित, बेजोड़ और बेमिसाल हो। उसमें सम्मिलित होने के लिये लोग तरसें, न कि वह

लोगों की संख्या और जमघट के लिये तरसता रहे। एक बार यह कह दो, पहाड़ चढ़कर पुकार कर कहो, मैं इस संघ परिवार के लिये तरसता हूँ, तब तुम देखना, कौन तुम्हारे लिये नहीं दौड़ता, कौन तुम्हारे लिये ह्रदय का बिछौना बिछाकर स्वागत नहीं करता, कौन ऐसा शेष रहता है, जो तुम्हारे स्वागत के लिये हिमालय की चोटी पर चढकर नहीं पुकारता। पर मेरे मेहमान! ठग विद्या को छोड़कर सत्य को स्वीकार करो, इसी में सबका कल्याण है।''

संत वृति कहती है कि दूसरों के दोषों को देखने की बजाए स्वयं अपने दोषों को देखो। पूज्य श्री तनसिंहजी भी संत वृति के ही थे इसलिए वे अपने और दूसरों के दोषों को भी अपना बताकर स्वीकार किया करते थे। अपनी इस संतवृति के कारण, वे अपनी नहीं, संघ में आने वाले हर व्यक्ति की खुशी व संतोष चाहते थे, इसलिए नये आने वालों का निष्काम भाव से स्वागत किया करते थे। यह मार्ग पूज्यश्री के लिये तो लाभदायक सिद्ध हुआ। पर जो इस मार्ग को नहीं अपना पाये, वे नुकसान में ही रहे, इतना ही नहीं, उन्होंने तो अपने आत्मचिंतन की क्षमता भी खो डाली। पूज्यश्री का मानना है कि जिनकी आत्मचिंतन की प्रवृत्ति नष्ट हो गयी, उन्हें यदि अपने दोषों से परिचित नहीं कराया तो वे इस कुटुम्ब के कभी कुटुम्बी नहीं बन पायेंगे और पूज्यश्री यह कतई नहीं चाहते कि आने वाले मेहमान से ज्यादा कुछ नहीं। वे तो हर नव आगंतुक को अपने कुटुम्ब के रूप में देखना चाहते थे। पूज्यश्री तनसिंहजी ने इस सम्बध में कहा –

''कुछ लोग मुझे कहते हैं, दोष किसी का हो, लेकिन हमें अपनी जीभ से किसी को दोषी न बताकर अपने ही भीतर दोष को देखने की चेष्टा करनी चाहिए। लोगों को अपनी ओर स्वभावत: आकृष्ट करना चाहिये। उनसे कुछ इच्छा मत रखो। निष्काम भाव से ही लोगों का स्वागत करो यह कामना मत करो, कि वे यहाँ ठहर कर तुम्हारे कौटुम्बीय बन जावें। पर मेहमान! सच बताना, यह भाषा और भाव तो मेरे ही हैं, इससे असहमत होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं पैदा होता। पर इससे समस्या का हल केसे हुआ, कार्य तो कारण से होता है। तुम्हारे भागने का कारण जब यह नहीं हुआ, तो इस कारण से कार्य कैसे होगा? इस दृष्टिकोण से तुम्हारा आना होगा, यह कैसे मानूँ? यह जरूर मानता हूँ कि इससे हमें अवश्य संतोष होगा, पर मेरे मेहमान! मैं तो अपना संतोष नहीं चाहता, तुम्हारा संतोष चाहता हूँ। तुम कैसे संतुष्ट हो सकते हो? मुझे तो यह बताओ! क्या तुम्हारे दोषों को मैं स्वीकार कर लूंगा, इसलिए तुम फिर आ जाओगे। बहुत संभव है, आ सकते हो। तब अर्थ यह हुआ कि भविष्य में भी तुम्हें अपने दोषों से परिचित नहीं कराया जाए, अन्यथा तुम फिर चले जाओगे। कुल मिलाकर स्थिति यह हुई, कि तुम वापस भी आना चाहते हो, लेकिन मेहमान के रूप में, इससे अधिक और कुछ नहीं। कान खोलकर सुन लो! अब मैं तुम्हें मेहमान के रूप में नहीं चाहता, इसकी अपेक्षा तो मैं तुम्हारे बिना ही संतोष कर लूंगा, लेकिन यह नहीं चाहता कि लोगों के आने और जाने का तांता बना रहे और मेरा कुटुम्ब सदैव मेहमानों की चापलूसी में लगा रहे। मैं अपने और दूसरों के दोषों को अपना बताकर स्वीकार करूं, यह मेरे लिये वास्तव में लाभदायक है और मुझे ऐसा करना भी चाहिए यदि मैं अपना विकास चाहता हूँ, तो मुझे यही मार्ग अपनाना चाहिये। पर ध्यान रखो, इससे नुकसान किसी को नहीं, केवल तुम्हें ही होगा। तुम अपनी आत्मचिंतन की और अपने दोषों को स्वीकार करने की क्षमता खो डालोगे। यह मार्ग यदि तुम अपनाते हो तो तुम्हें भी लाभ होगा। मुझे तो लाभ होगा ही इसलिए मुझे अब यही मार्ग अपनाना है, पर इसे शाश्वत नीति के रूप में मैं स्वीकार नहीं करूँगा, केवल अपने लिये और अपने ही क्षेत्र में। यह बात नहीं कि मुझे सामूहिक क्षेत्र में स्वीकार करने में लज्जा आती है, पर इसलिए कि इससे सामूहिक जीवन व्यक्ति सापेक्ष और निर्बल बनता है, उसे अब आत्मगौरव का पाठ पढ़ाने की आवश्यकता मैं महसूस कर रहा हूँ। हमें अपने खानदान पर

गर्व होना चाहिए। उसके सामूहिक रूप को द्रोहियों के प्रति असहिष्णु होना ही चाहिए, अन्यथा तुम्हारा वंश बढता ही जाएगा। यही तो कहना चाहते हो न कि रावण ने लात मारी तभी आहत अहंकार के कारण ही विभीषण राम से मिल गया, नहीं, यह बात कोई नहीं कहता और यदि यही बात कोई कहे, तो विभीषण में कोई गुण ही नहीं रहता। सभी ने यही कहा है कि विभीषण राम की भक्ति के कारण रावण से अलग हुआ था। पर विभीषण की राम भक्ति ही उस शब्द के गाली होने का कारण है। मुझे वह दुहरी भक्ति नहीं चाहिए। राम के अनुचर को रावण से मिलते न मैं सहन कर सकता और न कोई और। मेरे मेहमान! अब तुम्हीं अपने विषय में कुछ सोचने का अभ्यास करो, क्योंकि तुम्हारी आत्मचिंतन की प्रवृत्ति नष्ट होती जा रही है। मैं यदि तुम्हारे दोषों को अपने दोष मान लूंगा तो इससे मुझे लाभ होगा, पर तुम्हें नुकसान होगा।''

श्री क्षत्रिय युवक संघ में आने वाले अधिकांश लोग तो इसे अपना कुटुम्ब समझकर इसमें टिक गये, पर कुछ लोगों का संघ में आने और जाने का सिलसिला चलता रहा है। जो लोग संघ में टिक नहीं पाये और चलते बने, ऐसे लोगों को पूज्य श्री तनसिंहजी ने 'मेहमान' शब्द से सम्बोधित किया है। ऐसे मेहमानों को सम्बोधित करते पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा –

''तुम समझते हो, मेरे मेहमान! कि तुम मुझे याद आते हो! नहीं, बिल्कुल नहीं। मैं तुम्हें सर्वथा भूल जाना चाहता हूँ, मैंने तुम्हें भुलाने की भरसक चेष्टा की है और करता रहूँगा। अपने जीवन की पुस्तक से उस अध्याय को फाड़ देना चाहता हूँ, जिसमें तुम्हारा वर्णन है। क्योंकि मुझे नये अध्याय लिखने हैं, नये मेहमानों का स्वागत करना है और पुराने मेहमानों को विदा देना है। अब मेरा एक मेहमान विभाग है जिसका काम है, आने वाले का स्वागत करना और इच्छा होने पर तत्काल विदा देना। मेरे जीवन का जो सबसे बड़ा दुख दर्द भरा अध्याय है, उसे मैं अत्यन्त साधारण अध्याय बना देना चाहता हूँ। यह सिद्ध करना चाहता हूँ कि तुम किसी विशेष कारण से ही गए, तुम्हारे जैसे लोगों का स्वभाव ही जाने का होता है और यह आना और जाना अत्यन्त सामान्य है, असाधारण नहीं।'' ***(क्रमशः)***

पतंगा शमा के पास क्यों आता है? इसका कारण प्रत्यक्ष होना चाहिए। क्या उसे प्रकाश का अनुराग है? यदि हाँ, तो अंधकार से बाहर निकलने की उसकी तड़फ गहरी होनी चाहिए। यदि शमा के पास आने का कारण परिस्थितियों की विवशता है, तो उस विवशता से मुक्त होने के बाद ही अनुभव किया जा सकता है कि यथार्थ प्रेरणा कितनी चिरस्थाई है? यदि इसका कारण केवल यही है कि यह युगधर्म बन चुका है तो हर युग में हुतात्माओं द्वारा आत्म बलिदान होता जायेगा, मगर वह सृजन का केन्द्र नहीं हो सकेगा। ऐसे युगधर्म को स्थाई आधार ढूंढ़ना होगा। कुछ भी हो, कुछ ऐसी अस्पष्टताएँ हैं जिन्हें अनुभव तो किया जा सकता है, मगर स्पष्ट हुए बिना उपचार नहीं किया जा सकता। शायद समय ही इसका निराकरण कर सकेगा।

– पू. तनसिंहजी

<u>गतांक से आगे</u>

मेरी साधना

लेखक – पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य–श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद–प्रोफेसर रूपसिंह लिम्बड़ी

अवतरण–25

आचरणहीन ज्ञानी ईश्वर द्वारा प्रेषित संघर्ष के कटु अवसर से बचने के लिये सदैव ज्ञान का दुरुपयोग करते हैं। वे अपनी आत्म–दुर्बलता, सुषुप्त भीरुता और परिस्थितिजन्य विवशता को तर्क और विश्वास की ढाल के नीचे छिपाकर स्वयं के बचाव का आयोजन करते हैं। पर मुझे समझना होगा कि संघर्ष–विमुख होने से वह अपकीर्ति होगी जो सहस्रों कुम्भीपाक नरकों से कहीं अधिक भयावह है। स्वाभिमान से जीऊँ और गौरव से मरूं। अपकीर्ति तेरा नाश हो!

संघर्ष से भागूंगा नहीं, डरूंगा नहीं मौत से।
कीर्ति यश प्राप्त करूं, जीऊँ और मरूं गर्व से।।

ज्ञान वही ज्ञान है, जिसका जीवन में आचरण है। जो ज्ञान अपने आचरण में नहीं उतरता है, वह ज्ञान नहीं है। वह तो अपने कर्तव्य से हटने के लिये, संघर्ष से बचने के लिये केवल तर्क के काम में आता है। यहां संघर्ष को ईश्वर प्रेषित कटु अवसर कहा गया है। कभी–कभी नियति हमारी कसौटी के लिये अनपेक्षित अवसर-संयोग–परिस्थिति हमारे समक्ष खड़ी कर देती है।

गुजरात (सौराष्ट्र) में एक बहुत बड़े लोक साहित्यकार, क्रांतिकारी हो गए हैं। उन्हें 'राष्ट्रीय शायर' का विरुद दिया गया है। नाम है झवेरचन्द मेघाणी। 'सौराष्ट्र की रस धार' शीर्षक से उन्होंने दूर–दराज के गाँवों में जाकर अनेक वीरों के बलिदान की कथाओं का शोध कर पांच भागों में कहानियों के रूप में प्रकाशित किया है। उनकी अनेक कथाएँ क्षत्रिय वीरों की बलिदान की कथाएँ हैं। ऐसी ही एक कथा है– 'रंग छे रवा भाई ने'। सौराष्ट्र की भावनगर रियासत के एक गाँव वडोद के क्षत्रिय वीर रवा भाई की क्षत्रियोचित व्यवहार और वीरोचित बलिदान की कथा है। घटना इस प्रकार है– रवाभाई अपनी बैलगाड़ी में घर के लिये आवश्यक सामान लेकर भावनगर से वडोद अपने गाँव जा रहे थे। जाते–जाते रास्ते में रात हो गई। बैल भी थक गये थे। रवाभाई ने मार्ग में एक जलाशय के पास उचित स्थान पर रात वास (रात को रुकने) का निश्चय करके बैलों को चारा–पानी देकर खुद विश्राम करने लगे। उस समय एक बारात के बारातियों ने भी यहाँ रात को विश्राम करने का निश्चय किया। बारात को लूटने के लिये लुटेरे बारात का पीछा कर रहे थे। यहाँ एक 'दरबार' बापू ठहरे हुए हैं, हमारा रक्षण होगा (सौराष्ट्र में राजपूत को दरबार और बापू नाम से सम्बोधित किया जाता है।) ऐसा मानकर वह बारात वहाँ रुकी। कुछ ही देर में लुटेरे बारात लूटने को आ पहुँचे। रवाभाई ने लुटेरों को ललकारा। लुटेरों ने कहा–''बापू! आप बीच में मत आइये। हम आपको तो कोई नुकसान नहीं कर रहे हैं। इस बारात से भी आपका कुछ लेना–देना है नहीं। न तो यह बारात आपके किसी जाति वालों की है, न आपके गाँव की, फिर आप क्यों बीच में आते हैं?'' रवाभाई ने कहा, –''मैं एक राजपूत हूँ। मेरे होते हुए कोई इन्हें लूटे या परेशान करे तो उनकी रक्षा करना मेरा क्षात्रधर्म है। इसलिए तुम सब भाग जाओ।'' लेकिन वे लुटेरे भागे नहीं, लुटेरों और रवाभाई के बीच संघर्ष हुआ, लुटेरों को बारात लूटे बिना भागना पड़ा। उनके मुँह से निकल पड़ा, –'रंग छे रवाभाई ने!'। लुटेरों का नायक जब तक जीवित रहा, और जब भी 'कसुंबा' लेता तो पहले रवाभाई को रंग देकर ही लेता था।

क्षात्रधर्म का पालन करते–करते वहाँ रवाभाई घायल हुए लेकिन अपने प्राणों की परवाह किए बिना रवाभाई ने बारात को लुटने नहीं दिया। ये बारात वाले तो संयोग से वहाँ आ गए थे, रवाभाई से न उनका परिचय था, न उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व रवाभाई पर था। परन्तु ईश्वर प्रेषित इस प्रसंग को रवाभाई ने अपने क्षात्रधर्म का पालन करने का एक अवसर देखकर इस अवसर का स्वागत किया और क्षत्रियत्व का गौरव बढाया। आपने 'बापू' शब्द को सार्थक कर दिखाया।

क्षत्रिय वह है जो कभी संघर्ष से बचने का बहाना नहीं बनाता है। साधक इस अवतरण में यह संदेश दे रहा है। एक क्षत्रिय के लिये दीर्घकालीन जीवन से क्षत्रियोचित मृत्यु अधिक श्रेयस्कर है। मेरी साधना के ये अवतरण हमें क्षत्रियोचित जीवन जीने का स्मरण, चिंतन और मनन करने की प्रेरणा देते हैं। क्षत्रिय के लिये अपकीर्ति मृत्यु से भी बदत्तर है। स्वाभिमान का जीवन जीने और गौरवपूर्ण मृत्यु प्राप्त करने की प्रेरणा हेतु प्रभु से प्रार्थना।

अवतरण–26

मैंने अमरता और क्षणभंगुरता के रहस्य को समझ लिया है। स्व–धर्म रूपी अमृत के आस्वादन से मैं देवत्व की अमर योनि का अधिकारी और धर्म–विमुखता रूपी गरल–सीकर पान कर मृत्यु का ग्रास बन सकता हूँ।

तो मैं क्या करूँ? मैं मृत्यु और जीवन दोनों का रसास्वादन करना चाहता हूँ–मरकर भी जीवित रहना चाहता हूँ। मैंने सत्य से साक्षात्कार कर लिया,–देखो, प्रतिध्वनि उठती है–''वीर एक बार मरकर अमर हो जाता है पर कायर हजार जीवन जीकर भी मर जाता है।''

वीर मरकर भी जिन्दा है,
कायर जी कर भी मुर्दा है।

मौत से कौन डरता है? जो शरीर की क्षणभंगुरता और आत्मा की अमरता को नहीं समझता है, वह। जो वीर क्षत्रिय अपने स्वधर्म का पालन करते–करते मृत्यु से भेंट करता है, वह मरता नहीं है, देवत्व की अमर योनि का अधिकारी बन जाता है। स्वधर्म पालन से विमुख होना अपकीर्ति का कारण है और अपकीर्ति मृत्यु का पर्याय है।

इस अवतरण में साधक ने स्वधर्म पालन को अमृत कहा है। धर्म विमुखता को विष कहा है। ''मैं मृत्यु और जीवन दोनों का रसास्वादन करना चाहता हूँ'' इस विधान का गर्भित अर्थ है, मैं बलिदान देना चाहता हूँ। कर्तव्य की वेदी पर बलिदान दिए बिना मृत्यु और जीवन का रसास्वादन नहीं हो सकता। मरकर जीने का एक ही रास्ता है, और वह है, अपने स्वधर्म–कर्तव्य कर्म का पालन करते–करते वीरोचित मृत्यु। ***मरो परन्तु यों मरो कि याद जो करें सभी। हुई न यों सुमृत्यु तो वृथा जीये, वृथा मरे।।*** श्रद्धेय श्री आयुवानसिंहजी का स्वयं का जीवन हमारे लिये प्रेरणादायी है। विचार–वाणी और व्यवहार की एकता उनके जीवन में दिखाई देती है। ऐसा जीवन जी कर मरने वाले ही मौत और जिन्दगी दोनों का परिपूर्ण रस ले सकते हैं।

साधक कहता है–'मैंने सत्य से साक्षात्कार कर लिया है।' वह कौनसा सत्य है जिसका साधक ने साक्षात्कार कर लिया है? वह सत्य है शरीर और आत्मा का। शरीर मृत्यु है, आत्मा अमृत्य है। शरीर जन्म लेता है और मरता है। आत्मा न तो जन्म लेती है न मरती है। जो नष्ट होता है और उत्पन्न होता है, उसके नष्ट होने पर शोक कैसा? उसके पैदा होने पर हर्ष कैसा? यह है जीवन का सत्य। यह शरीर कब नष्ट होगा इसका कोई निश्चित समय कोई भी शरीरधारी नहीं जानता है। लेकिन नष्ट होगा अवश्य यह सब जानते हैं, तो फिर स्वयं समाज के लिये, जाति के लिये, धर्म के लिये, संस्कृति की रक्षा के लिये, राष्ट्र की रक्षा के लिये यदि वह नष्ट होता है तो इससे अच्छा, बेहतरीन अवसर क्या हो सकता है? यही मरकर जीने का मार्ग है। मृत्यु और जीवन का रसास्वादन इससे ही हो सकता है। क्षणजीवी शरीर को समर्पित करके अक्षुण्ण जीवन प्राप्ति का यही एकमात्र उपाय है। मृत्य को अमृत्य बनाने का यही उपाय है। महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, क्रांतिकारियों ने इस मार्ग का अनुसरण करके अपने को अमर बना लिया। उनकी आवाज सुनाई दे रही है –

कर चले जानों तन साथियों,
अब तुम्हारे हवाले वतन साथियों।

भारत वर्ष का इतिहास कुर्बानी का इतिहास है। और कुर्बानी हम क्षत्रियों की रक्तवाहिनियों में भरी है। क्षत्राणियाँ, हिन्द की राजपूतानियाँ कुर्बानी के लिये ही बच्चों को जन्म देती हैं। महाभारत के समय जब श्रीकृष्ण पांडवों के दूत बनकर आए पर दुर्योधन किसी बात पर सहमत नहीं हुआ तो वापस जाते समय कृष्ण कुन्ती जी से मिलने गये। कुन्ती ने कृष्ण के द्वारा पांडवों को संदेश भेजा। क्या था वह

संदेश? संदेश था–''बेटा, क्षत्राणियाँ जिस समय के लिये पुत्रों को जन्म देती है, वह समय अब आ गया है।'' सारा इतिहास हम क्षत्रियों की कुर्बानियों और बलिदान से भरा पड़ा है।

अवतरण–27

धर्म का कारण, अर्थ का साधन, काम का उपाय और मोक्ष का सोपान समस्त कारणों के कारण की भाँति केवल एक ही है,–क्षात्रधर्म।

ज्ञान की शुष्कता में जीवन का माधुर्य कहाँ? भक्ति की साधना में कर्तव्य का बोध कहाँ? कर्म अकेला जड़ है। इन तीनों का सुन्दर संगम, मनुष्य की समस्त ज्ञानात्मक, रागात्मक और कर्मात्मक प्रवृतियों और क्रियाओं का प्रश्रय–स्थल,–लौकिक और आध्यात्मिक शक्तियों का समन्वय– केन्द्र, सर्व कल्याण का मूल स्रोत कौन है? केवल क्षात्रधर्म।

हमारे शास्त्रों में मनुष्य जीवन के चार पुरुषार्थ बताये गये हैं। मनुष्य जीवन का हेतु ये चार पुरुषार्थ हैं। धर्म–अर्थ–काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ मानव की तमाम प्रवृतियों का मूल कारण है। इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के तीन साधन बताए गये हैं। एक है ज्ञान, दूसरा है भक्ति और तीसरा है कर्म। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने इन तीनों को योग कहा है। ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग के द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की पूर्ति बताई गई है। परन्तु यह भी बताया गया है कि केवल ज्ञान शुष्क है। केवल भक्ति में भक्त कर्तव्य कर्म से, कर्तृत्व से हट जाता है। और केवल कर्म जड़वत है। यथार्थ में ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय ही पुरुषार्थ पूर्ति हेतु सर्वश्रेष्ठ साधन है।

साधक ने ज्ञान, भक्ति और कर्म के समन्वय का स्वरूप हमारे समक्ष रख दिया है। इन तीनों को यदि एक ही में समाविष्ट करना है तो वह है क्षात्रधर्म। क्षात्रधर्म में ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वित रूप है। क्षात्रधर्म का पालन करने में ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग तीनों का पालन हो जाता है। क्षत्रिय को जीवन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हेतु, ज्ञान, भक्ति और कर्मयोग की साधना करने की आवश्यकता नहीं है। केवल क्षात्रधर्म के पालन में ही तीनों का पालन हो जाता है। मतलब यह है कि क्षत्रिय के क्षात्रधर्म पालन से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थ प्राप्त हो जाते हैं।

प्रश्न यह हो सकता है कि क्षात्रधर्म क्या है? उसमें ऐसा क्या है जिससे चारों पुरुषार्थ इस एक के पालन से प्राप्त हो जाते हैं?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि क्षात्रधर्म का मतलब है, समाज में जब इष्ट पर अनिष्ट हावी होता है तो अनिष्ट का नाश करके इष्ट की रक्षा करना; धर्म पर अधर्म का आधिपत्य होने पर अधर्म का नाश कर धर्म की रक्षा करना; सदाचार को जब दुराचार दबाने लगे तो दुराचार को दूर कर सदाचार की वृद्धि करना; अनीति जब नीति का स्वांग धारण करे तो अनीति को बेनकाब करके नीति के शुद्ध रूप प्रकाशित करना। समाज में जो प्रवृतियाँ जन–साधारण, आम आदमी को पीड़ा देने वाली होती हैं; चाहे धर्मक्षेत्र में दंभ और आडम्बर एवं अधार्मिक प्रवृत्तियाँ हों,–आर्थिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार एवं छल–कपट व चोरी से, लूट से जो परेशानियाँ और अनर्थकारी प्रवृतियाँ हों; राजकीय क्षेत्र में राष्ट्र सेवा की आड में व्यक्तिगत स्वार्थ एवं 'मामका: पाण्डवाश्च' की प्रवृति बढती जाती है, तब ऐसी सभी प्रवृतियों पर नियंत्रण करना क्षात्रधर्म है। ऐसी प्रवृति करने वालों को उचित दण्ड देना, उनके गुनाहों की सजा देना क्षात्रधर्म है। परन्तु क्षात्रधर्म के पालन के लिये क्षत्रिय का सामर्थ्यवान होना, बलवान होना, शक्तिशाली होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

आज हमारे राष्ट्रीय जीवन में सर्वत्र अनिष्टकारी प्रवृतियाँ दिन प्रतिदिन प्रबल होती जा रही हैं। जनसाधारण को अपना रक्षक कहीं नहीं दिखाई देता। क्यों? क्योंकि क्षात्रशक्ति क्षीण हो गई है। क्षात्रशक्ति का प्रभाव नहीं रहा है। अनिष्ट तत्वों पर नियंत्रण रखने का हमारे पास सामर्थ्य नहीं रहा है। आज प्रत्येक क्षेत्र में हो रही अनियंत्रित प्रवृतियों से जनता बेहद परेशान है। असुरक्षित है। बहू–बेटियों पर सरेआम बलात्कार हो रहे हैं, हत्यायें हो रही हैं,

बैंकें लूटी जा रही हैं। धर्म में भी दुराचार प्रविष्ट हो चुका है। सर्वत्र अशान्ति, असलामति, भय और भूख एवं भ्रष्टाचार फैल गया है। आज क्षात्रधर्म पालन हेतु एक तरह से ललकार है। हमें सामर्थ्यवान, सशक्त, सदाचारी बनकर जनता को निर्भयता और सुरक्षा देना है। संघ की शाखा में एवं शिविरों के माध्यम से सशक्त, चरित्रशील, न्यायप्रिय युवाओं का निर्माण करना होगा, जो क्षात्रधर्म पालन के लिये सक्षम बन सकें।

अवतरण–28

स्वतंत्रता जिसका सुन्दर परिधान, स्वाभिमान आत्मा और गौरव जीवन है। वह परतंत्रता, पराजय, अपमान और अपयश को ग्रहण नहीं कर सकता। स्वार्थ, भीरुता और अकर्मण्यता काले नाग से भी अधिक भयानक है। कारण कि वह तो केवल मनुष्य के शरीर को ही डसता है, पर ये उसके शरीर, आत्मा और यश तीनों का नाश कर देते हैं।

अवतरण पच्चीस में साधक ने 'स्वाभिमान से जीने और गौरव से मरने' की बात कही है। स्वाभिमान से जीऊँ और गौरव से मरूँ यह साधक की मनोवाञ्छा है। पराधीनता, अवहेलना, अपयश को सहन करना क्षत्रिय के लिये मृत्यु से भी बदतर है। पराधीनता का मतलब केवल शासकीय पराधीनता ही नहीं, किन्तु जीवन के किसी भी क्षेत्र में अन्य के आश्रित होकर, अन्य का आलम्बन पाकर जीना, किसी की दया के पात्र बनना, ये सब भी पराधीनता ही है। भले ही पराधीनता में भौतिक सुविधा मिलती हो। कभी-कभी पराधीनता स्वाधीनता से अधिक सुन्दर बनकर आती है। लेकिन ऐसे सौंदर्य में फंसना आत्म हनन है। संभव है कि ऐसी पराधीनता स्वाधीनता से अधिक सुरक्षा प्रदान करने वाली भी हो। परन्तु है यह पराधीनता। तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है-पराधीन सपने हु सुख नाहि।

हमारे इतिहास के पन्नों पर ऐसी अनेक घटनाएँ और ऐसे अनगिनत पात्रों के जीवन चरित्र अंकित हैं जिनमें अपने आत्म गौरव, कुल गौरव, राष्ट्र गौरव की रक्षा के लिये अपने सर्वस्व की बलि देने का उल्लेख मिलता है।

साधक कहता है-निजी स्वार्थ, भीरुता (कायरता, मृत्यु का भय), अकर्मण्यता ऐसे भयंकर और विनाशक हैं जो काले विषैले साँप से भी अधिक भयानक हैं। विषैला साँप तो केवल शरीर को डस कर शरीर का ही नाश कर सकता है। किन्तु ये तो शरीर, आत्म गौरव और यश-कीर्ति का भी नाश कर देते हैं। आजकल एक ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण वृति पैदा होती जा रही है कि 'सर सलामत तो पगड़ी बहुत'। सर की सलामती का विचार तो क्षत्रिय जीवन के लिये ही नहीं, मानव जीवन के लिये भी घातक है। होना तो यह चाहिए कि 'सर जाये तो जाये पगड़ी नहीं झुकेगी'। पगड़ी हमारी शान है, बान है और आन है। स्वाधीनता, स्वाभिमान और आत्म गौरव खोकर जीना भी कोई जीवन है?

आत्म गौरव की रक्षा के लिये, क्षत्रियोचित जीवन व्यवहार की शिक्षा के लिये, क्षात्रधर्म के पालन के लिये, वीरों के निर्माण के लिये, व्यक्तिगत चरित्र की उत्तमता के लिये क्षत्रिय युवक संघ दृढ कदम उठा रहा है। आज का विषैला वातावरण उसमें अनेक रूप से व्यवधान डालकर पथ विचलित करने को उतारू है। परन्तु साधना का मार्ग छोड़ना नहीं है। प्रत्येक क्षत्रिय का कर्तव्य है कि इस साधना में तन-मन-धन से पूर्ण सहयोग करे, जिससे संघ की हेतुपूर्ति को गति मिले। ***(क्रमशः)***

जब धर्म धरती की नहीं केवल आकाश की वस्तु बन जाता है, जब धर्म में जन-जीवन की समस्याएँ नहीं रह जातीं, जब धर्म ब्रह्मचर्य के समान जड़ होकर मानवी संवेदनाएँ खो देता है, तब वास्तव में उसकी मृत्यु हो जाती है। तब मनुष्य उस जड़ धर्म की बेड़ी को उतार फेंकने का प्रयत्न करता है।

– वीरभानसिंह प्रताप

गतांक से आगे

जीवन्मुक्ति की प्राप्ति

– स्वामी यतीश्वरानन्द

कारागार का निर्माता–अहंकार :

यथार्थ ज्ञान हमारे मिथ्या व्यक्तित्व बोध को, उसके सभी झूठे सम्बन्धों के साथ ध्वंस कर देता है। वह हमारी चेतना के केन्द्र को देह और मन से हटाकर परमात्मा में, जड़ पदार्थ से हटाकर आत्मा में ला देता है। हमारा वर्तमान व्यक्तित्व देह, इन्द्रियों, मन और अहंकार का सम्मिश्रण है। आध्यात्मिक जीवन का अर्थ इस संघात को नष्ट करना, चेतना के केन्द्र को इस सम्मिश्रण से हटाकर आत्मा में लाना है, और कुछ नहीं। लेकिन यह ग्रन्थि सतत् साधना से ही टूट सकती है। यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है। मिथ्या व्यक्तित्व के इस विघटन में कोई चमत्कार, कोई रहस्य नहीं है। बल्कि यह बात अत्यन्त स्पष्ट, निश्चित और सटीक है, जरा भी रहस्यमय नहीं। रहस्यमय बातों के पीछे कभी मत भागो। योग में कोई भी रहस्य, कोई भी गोपनीय बात कदापि नहीं है। वह अत्यन्त सरल है। हमने गलती से इस विचित्र समष्टि (देह-इन्द्रियादि) के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया है। देह, इन्द्रियों, मन और अहंकार के इस समस्त सम्मिश्रण को नष्ट करके, हमारे वास्तविक स्वरूप की तरह सरल बनना ही आध्यात्मिक जीवन है। हम न तो कुछ वस्तुओं की समष्टि हैं और न ही कोई पेचीदा वस्तु हैं, बल्कि स्वरूपतः अत्यनत सरल हैं। लेकिन दीर्घ, निरंतर साधना के बिना इसकी अनुभूति नहीं हो सकती।

अविद्या इन सभी पदार्थों को एक साथ बाँधकर रख सकती है। अविद्या के नष्ट होने पर यह संहति कुछ समय तक बनी रहती है, उसके बाद समाप्त हो जाती है। नौका खेना बन्द कर देने पर भी पूर्वप्रदत्त गति नौका को कुछ दूर तक ले जाती है। कसौटी यह है कि क्या हमने देह, मन आदि के मिथ्या समूह के साथ अपना तादात्म्य त्यागा है? जब बुद्ध को चरम-ज्ञान प्राप्त हुआ, तो वे कह उठे :

रहा मैं, अनेक जन्म भवनों में
कर्मरत सदा तलाश में उसकी,
इन्द्रियों के दुःखदायी कारागारों में,
अन्तहीन संघर्ष दुःखदायी।
पर अब,
तुझे जान गया हूँ,
डेरे के निर्माता, तुझे।
अब न बना पाएगा तू,
दुःखदायी ये दीवारें।
धोखे की टट्टी, मिट्टी की काया यह,
तेरा घर टूट चुका है,
माया का खम्भा फट चुका है,
मैं सुरक्षित, मुक्ति की ओर बढ़ चुका हूँ।

सर्वप्रथम हमें खनिज को धूल, मिट्टी, बालू जैसी नाना अनावश्यक वस्तुओं से पृथक् करना होगा–फिर उसे अग्नि में डालना होगा। यह पहली सफाई है। उसके बाद समूची अशुद्धि को भस्म करना होगा, जिसके उपरान्त विशुद्ध सोना बच रहे। यह शुद्धिकरण है। इसी तरह आध्यात्मिक जीवन में विवेक द्वारा हमें यह जानना चाहिए कि आत्मा, मन और देह से पृथक् है और उसके बाद साधना द्वारा उसे मन की अशुद्धियों से मुक्त करना चाहिए। जिस मात्रा में हम संयम, पूर्ण ब्रह्मचर्य एवं विवेक का अभ्यास करेंगे, उसी मात्रा में हम यथार्थ ज्ञान अर्जन करेंगे। इसके बिना ज्ञान नहीं हो सकता। जितना ज्ञान होगा, उतने ही हम बन्धन और दुःख से मुक्त होंगे। और तब सत्य-परमात्मा परमानन्द और शान्ति से हमें पूर्ण करता हुआ प्रकाशित होगा।

हम सभी में सत्य और मिथ्या की एक ग्रन्थि है। यह है हमारा अहंकार। यथार्थ ज्ञान इस ग्रन्थि को जला डालता है और अहंकार अथवा मिथ्या आत्मा के नष्ट होने पर हम अपनी वास्तविक आत्मा का साक्षात्कार करते हैं। तब हम यह अनुभव करते हैं कि स्वरूपतः हम एक अखण्ड, अक्षर, सर्वव्यापी परमात्मा के अंश हैं।

दीर्घ काल तक ज्ञान प्राप्ति का प्रयास किये बिना यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता। इसीलिए महान् व्यवधान रहित निरंतर साधना की आवश्यकता है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में मानव को लम्बा समय लगता है। केवल एक पूर्ण धैर्यवान् व्यक्ति ही उसे प्राप्त कर सकता है।

मुक्त होकर दूसरों को मुक्त करो :

हममें केन्द्रापसारी और केन्द्राभिमुखी शक्तियाँ कार्यरत हैं। केन्द्राभिमुखी शक्ति की सहायता से हमें अन्दर प्रवेश करना चाहिए, अर्थात् हमारी चेतना के वास्तविक केन्द्र तक पहुँचना चाहिए। देह और मनकी समस्त क्रियाएँ चेतना के एक केन्द्र-विशेष से सम्बन्धित रहती हैं। इसका हमें पता लगाना चाहिए। वही आत्मा और परमात्मा का मिलनबिन्दु है। हमारी केन्द्राभिमुखी शक्ति को इस केन्द्र की प्राप्ति के लिये एकाग्र करना चाहिए।

केन्द्रापसारी शक्ति का उपयोग बन्धन से मुक्ति के लिये करना चाहिए। आत्मा स्वरूपत: नित्यमुक्त है। जब कभी आत्मा अपनी स्वरूपगत मुक्ति को प्रकट करने का प्रयास करती है, तभी वह अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करती है। हम अपने देह और मन से ही बद्ध हैं। इन पर नियंत्रण बनाए रखना सीखने पर हम मुक्त हो जाते हैं। जीवन्मुक्ति आत्मसंयम एवं बल का एक अद्भुत जीवन है। वास्तविक सुख इसी में है। अन्य सभी प्रकार के भोग नाना प्रकार के काँच के दाने हैं, जो बारम्बार टूटते हैं, लेकिन आत्मसंयम का यह आनन्द नित्य और अपरिवर्तनशील है।

आध्यात्मिक पथ का अनुसरण करके तथा चित्त और हृदय को शुद्ध करके, हम सभी को इसी जीवन में आत्मसाक्षात्कार और मुक्ति की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिए। किसी निम्नतर आदर्श पर रुकने के बदले वेदान्त आत्मसाक्षात्कार और मुक्ति का उच्चतम आदर्श अपने समक्ष बनाये रखने का हमें आह्वान करता है। यदि इसी जन्म में परमात्मा का साक्षात्कार करने में हम असफल रहें, तो उच्चतम ज्ञानालोक और मुक्ति की प्राप्ति तक जन्म-जन्मान्तर तक संघर्ष करते रहने के लिये हमें तैयार रहना चाहिए। तब अपनी क्षुद्र रीति से, हम भी दूसरों को ज्ञान के लिये सहायता कर सकेंगे।

हमारा लक्ष्य इसी जीवन में, जीवन रहते, मुक्त होना है। मृत्यु के पूर्व ही हमें मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए। मानव जन्म एक दुर्लभ सौभाग्य है। मानव ही मुक्ति और पूर्णता के लिये संघर्ष कर सकता है। वही तात्कालिक जीवन निर्वाह सम्बन्धी आवश्यकताओं के परे एक उच्चतर लक्ष्य के बारे में सजग बना रह सकता है। अतएव इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अपने जीवन का पूरा सदुपयोग करना प्रत्येक मानव का कर्तव्य है। सभी लोग उसकी प्राप्ति में अभी सफल भले ही न होवें, तो भी सभी को उसके लिये प्रयत्न करना चाहिए। यदि पूर्ण मुक्ति नहीं, तो भी आंशिक मुक्ति अपनी प्राप्त कर लेनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति एक निम्न प्रवृत्ति के चंगुल से मुक्ति प्राप्त करता है, तो वह उन लोगों से श्रेष्ठ है, जो सभी प्रवृत्तियों के गुलाम हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है : ''साहसी बनो और सत्य के दर्शन करो, उससे तादात्म्य स्थापित करो, छायाभासों को शान्त होने दो।'' बहुत से लोग मिथ्या प्रतीति के आधार पर जीवन का निर्माण करने का प्रयत्न करते हैं। वे एक काल्पनिक जगत् में जीते हैं। वे सोचते हैं कि वे दूसरों से बहुत बुद्धिमान् और अच्छे हैं; वे कल्पना करते हैं कि उन्हें अद्भुत आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हो रही हैं। लेकिन एक समय आएगा, जब उनके जीवन में एक भीषण संकट अचानक उपस्थित होगा और तब उन्हें यह जानकर पश्चाताप होगा कि उनमें उस संकट का सामना करने और उससे उबरने की मानसिक शक्ति नहीं है। और तब उनका जीवन ताश के मकान की तरह ढह जाएगा। केवल सत्य ही हमारी रक्षा कर सकता है। सत्य पर आधारित जीवन ही दीर्घस्थायी होता है। हमें यथार्थ जीवन से प्रारम्भ करना चाहिए। हमारे जीवन के सामान्य अनुभव, इन्द्रियों से प्राप्त अनुभव, - न कि झूठी आशाएँ, स्वप्न और कल्पनाएँ, - हमारे जीवन के आधार होने चाहिए, भले ही वे दु:ख और कष्ट ही क्यों न लाएँ। यह कल्पना करना ही पर्याप्त नहीं है कि तुम आध्यात्मिक जीवन यापन कर रहे हो। तुम्हें जीवन के कटु सत्यों का सामना करके एक के बाद एक उन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

कृत्रिम जीवन नहीं अपितु यथार्थ जीवन यापन करने पर तथा साधन पथ का मन लगाकर पालन करने पर तुम उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति की प्राप्ति के अधिकारी बनोगे। आध्यात्मिक अनुभूति के अधिकारी होने पर वह अपने आप आती है। तुम आध्यात्मिक अनुभूति के बारे में अभी जो अनुमान लगा रहे हो, वह वैसी नहीं, बल्कि एक विस्मयजनक यथार्थ अनुभूति होती है।

सामान्य लोग वातमापक यंत्र की तरह होते हैं। वे अपनी सहजात प्रवृत्तियों के वशीभूत होते हैं और उनकी दिशा सतत् परिवर्तित होती रहती है। साधक उस तरह जीवन यापन नहीं कर सकता। उसे सहजप्रवृत्यात्मक जीवन को त्यागना होगा। उसकी चरम लक्ष्य के अनुरूप गठित एक निश्चित जीवन प्रणाली होनी चाहिए। उसे स्वयं को तब तक अनुशासित करना चाहिए, जब तक वह उसके लिये स्वाभाविक न हो जाए। तभी वह समस्त अनुशासनों से परे की स्थिति को प्राप्त कर सकता है। अनुशासन से हमें आध्यात्मिक अनुभूतियाँ होती हैं, जिनके फलस्वरूप हमें उच्चतर मुक्ति प्राप्त होती है।

वास्तविक मुक्ति सिर्फ हमारे लिये ही नहीं, अपितु दूसरों की सहायता के लिये भी आवश्यक है। जो स्वयं मुक्त है, वही दूसरों को मुक्त कर सकता है। तुम श्रीरामकृष्ण की भागवत पण्डित की लघुकथा जानते हो, जिसने एक राजा के समक्ष भागवत की व्याख्या करने का प्रयास किया था। प्रतिदिन की कथा के बाद जब पण्डित राजा से पूछता, ''मैंने जो कहा, क्या उसे आपने समझा?'' तो राजा उत्तर देता, ''पण्डितजी, पहले आप स्वयं समझें।'' आखिरकार पण्डितजी को पता चला कि स्वयं बद्ध होने के कारण वह राजा को सांसारिक बन्धनों से मुक्त नहीं कर सकता। इस ज्ञान के उदय होने पर वह संसार त्याग कर परिव्राजक संन्यासी बन गया। जाने के पूर्व उसने राजा के पास संदेश भेजा, ''हे राजन्, मैंने आखिरकार समझ लिया है।'' यदि हम दूसरों को दु:ख से मुक्त करना चाहते हैं, तो हमें भी स्वयं उससे मुक्त होना चाहिए। सांसारिक प्रलोभनों से अभिभूत होने वाला व्यक्ति अपने साथियों की सहायता नहीं कर सकता। अत: हमें दूसरों की सहायता करने के लिये स्वयं मुक्त होना चाहिए। जिस मात्रा में हम स्वयं मुक्त होंगे, उस मात्रा में ही हम दूसरों का मुक्ति के पथ पर मार्गदर्शन कर सकते हैं।

अत: आध्यात्मिक मुक्ति का आदर्श कोई स्वार्थपर आदर्श नहीं है, जैसी कि बहुत से पाश्चात्य आलोचकों की गलत धारणा है। भारत में सहस्रों मुक्तपुरुषों ने युगों से लोगों के आध्यात्मिक कल्याण के लिये कार्य किया है। यदि भारत आधुनिक काल में भी अध्यात्म का सबसे बड़ा आश्रयस्थल बना हुआ है, तो यह उन असंख्य आत्मानुभूति सम्पन्न लोगों के प्रयास के कारण ही है। अध्यात्ममुक्ति का लाभ प्राप्त कर वे दूसरों को उसकी प्राप्ति में सहायता करते हैं। हमें भी अपने साथियों सहित मुक्ति के लिये कठोर परिश्रम करना चाहिए। यही उच्चतम आदर्श है।

दुर्जन: सज्जनों भूयात् सज्जन: शान्तिमाप्नुयात्।
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्।।

अर्थात् ''दुर्जन सज्जन होवे; सज्जन शान्ति प्राप्त करे; शान्त व्यक्ति मुक्त होवे और मुक्त दूसरों को विमुक्त करे।''

(क्रमश:)

अपने को सदा बलवान, निरोग, शक्तिसंपन्न और पवित्र बनाओ। ऐसा बनाने के लिये यह निश्चय करना होगा कि मैं वास्तव में ऐसा ही हूँ। असल में बात भी यही है। हम शरीर नहीं, आत्मा हैं। आत्मा सदा बलवान, निरोग, शक्तिसंपन्न और पवित्र है, देह को मैं मानने से निर्बलता, बीमारी, अशक्ति और अपवित्रता आती है।

– हनुमानप्रसाद पोद्दार

मकड़ी अपने ही जाल में उलझ रही है

– आचार्य महाप्रज्ञ

पदार्थ सीमित हैं इसलिये उनका असीम भोग न करें। जल असीम नहीं है, उसका व्यय उसे असीम मानकर किया जा रहा है। पीने का जल आज भी कम है। केवल राजस्थान ही नहीं, अनेक प्रांत जल संकट से जूंझ रहे हैं। वैज्ञानिक कहते हैं-जल का इसी प्रकार अपव्यय होता रहा तो जल संकट एक दिन गंभीर रूप धारण कर लेगा। बड़े-बड़े शहरों में गंदी नालियों के जल को साफ कर पीने की नौबत आ सकती है। पुराने समय में लोग थोड़े से जल से स्नान कर लेते थे। रूपचंद जी सेठिया बावन तोला जल से स्नान कर लेते। एक बौद्धिक व्यक्ति को यह बात पुराने पन या पिछड़े पन जैसी लगती है। पानी को घी की तरह बरता जाये-इस धारणा में अतिरंजना की अनुभूति होती है। किन्तु किसी भी प्रवृत्ति और अवधारणा का मूल समस्या के संदर्भ में आंका जा सकता है। एक व्यक्ति नल के नीचे बैठा। स्नान में बहुत पानी बहा दिया। क्या यह सही है? यह प्रवृत्ति अहिंसा की दृष्टि से भी सही नहीं है। जो काम अल्प से किया जा सकता है उसके लिये अधिक व्यय क्यों?

सीमा, सामाजिक और धार्मिक-दोनों दृष्टियों से आवश्यक है। इस आवश्यकता की अनुभूति नहीं होती। उसके कारण आंतरिक हैं। एक व्यक्ति उसका मूल्य जानते हुये भी नहीं करता, इसका हेतु प्रमाद है। कोई व्यक्ति बहुत आराम का जीवन जीना चाहता है, सुख सुविधा को पूरी तन्मयता से भोगता है, वह सीमा नहीं करता। इसका हेतु सुविधावादी मनोवृति है।

एक दीप जलता है। अंधेरा मिट जाता है। ज्ञान की एक रश्मि से अज्ञान को मिटाया जा सकता है। एक जीवन सूत्र का स्पर्श हुआ, प्रमाद जागरूकता में बदल जाता है। अज्ञान और प्रमाद की समाप्ति जटिल नहीं है। जटिल है सुविधावादी मनोवृत्ति। आदमी जन्मा है सुख-सुविधा को भोगने के लिये। यह एक अवधारणा है, एक सिद्धान्त है, एक मत है। कवि ने ठीक लिखा है-'सुई का छेद महीन होता है।' जो मत बन गया उसे बदलना बहुत जटिल है। भर्तहरि ने शायद इसी बात को ध्यान में रखकर लिखा होगा।

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते जनो विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धंः ब्रह्मापि तं नरं न रजञ्जयती।।

अजान को समझाना सरल है। विशेषज्ञ को भी समझाना बहुत सरल है। मतवादी को मनुष्य तो क्या, ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता।

सुविधा की बात समझाने की आवश्यकता नहीं है, अपने आप समझ में आती है। सुखभोग की बात भी सरलता से समझ में आ जाती है। त्याग की बात समझाना बहुत कठिन है। त्याग की चेतना जागे बिना पदार्थ भोग की सीमा नहीं होती और पदार्थ भोग की सीमा बिना त्याग की तेजस्विता प्रकट नहीं होती।

अस्वीकार की शक्ति जागे :– अधिकतम सुख भोगने की बात प्रासंगिक बन गई है इस परिस्थिति में संकल्पशक्ति और मनोबल के विकास की बात सोची नहीं जा सकती। जीवन की सफलता के दो सूत्र हैं-संकल्पशक्ति और मनोबल। सुविधावादी दृष्टिकोण इन दोनों पर पर्दा डाल देता है। त्याग का पहला चरण है संकल्पशक्ति का विकास और मनोबल का पहला-चरण है-त्याग की चेतना। जो व्यक्ति अस्वीकार करना नहीं जानता, वह मनोबली नहीं हो सकता।

चिन्तन की त्रुटि :– मानसिक तनाव को आज विश्व की सबसे बड़ी समस्या माना जा रहा है। उपाय खोजे गये लेकिन पूर्णतया कारगर नहीं हो रहे हैं। मानसिक तनाव कोई बिमारी नहीं है। वह भावना का अंतर्द्वंद्व है। दवा उसे कैसे मिटा सकती है। उसकी कारगर चिकित्सा है-मनोबल का विकास। मन की तरलता में भावना की गन्दगी घुलती है, वह कमजोर हो जाता है और जल्दी टूट जाता है। यदि उसे जमा दिया जाये, वह बर्फ की शिला में बदल जाये तो गन्दगी उसमें घुल नहीं सकती। वह आती है, उस पर गिरती है और लुढ़ककर नीचे चली जाती है। इस दुनिया में यह सम्भव नहीं है कि गन्दगी न हो। यह है और रहेगी। सम्भव है-मन को ऐसी चट्टान बना देना, जिससे गन्दगी आये, गिरे और लुढ़ककर नीचे चली जाये। हम असंभव को सम्भव बनाने की बात सोच रहे हैं और जो सम्भव है, उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। यह चिंतन की त्रुटि ही समस्या का एक चक्र बना रही है और उसी में उलझ रही है। मकड़ी अपने लिये जाला बुन रही है और उसी में उलझ रही है।

*

बिहार की शान : वीरवर कुँवरसिंह पंवार

– गोपालसिंह राठौड़

महाभारत के युद्ध में भीष्म पितामह ने शस्त्र उठाया था, उस समय उनकी आयु 174 वर्ष थी और उस युद्ध में सबसे कम उम्र का वीर था अर्जुन पुत्र अभिमन्यु। कम उम्र में युद्ध भूमि में भाग लेने के, युद्ध भूमि में अपना बलिदान देने के तो महाभारत युद्ध के बाद भी असंख्य उदाहरण हैं। किन्तु महाभारत युद्ध के बाद बीते हजारों वर्षों में 75 वर्ष की उम्र के बाद किसी वीर ने युद्ध के लिये तलवार उठाई, ऐसा सिर्फ एक ही उदाहरण है। वह है बिहार के भोजपुर जिले के जगदीशपुर के राजा वीरवर कुँवरसिंह पंवार।

सिकंदर-पोरस, भीमदेव सोलंकी-बिन कासिम, चौहान-गौरी, खिलजी के विरुद्ध लड़े गए सभी युद्ध, बाबर-लोदी, बाबर-सांगा, शेरशाह-मालदेव, प्रताप-अकबर, शिवाजी-औरंगजेब, पानीपत का दूसरा और तीसरा युद्ध आदि बड़े-बड़े युद्ध इस देश की धरती पर लड़े गए। जिन्होंने इस देश के इतिहास की धारा को नई दिशा दी, जिनमें हुई जय-पराजय से भारतीय राजनीति का नक्शा ही बदल गया, किन्तु इतिहास प्रसिद्ध इन युद्धों में कोई नायक ऐसा नहीं दिखाई देता जिसकी आयु संघर्ष काल में 80 वर्ष रही हो। किन्तु हमारे नायक वीरवर कुँवरसिंह पंवार ने 80 वर्ष की आयु में अंग्रेजों के विरुद्ध बिगुल बजाकर, उनके विरुद्ध संघर्ष का नेतृत्व कर इतिहास के पन्नों में ऐसा स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ा है, जिसकी तुलना नहीं की जा सकती है। महाभारत काल से वर्तमान काल तक लड़े जाने वाले सभी युद्धों में एक ही कमी थी कि युद्ध का कोई नायक 75 वर्ष से अधिक का नहीं रहा। किन्तु इतिहास की इस कमी को आखिर पूरा कर ही दिया और इतिहास के इस महान क्रांति नायक बिहार के शेर कुँवरसिंह पंवार ने सिद्ध कर ही दिया कि ''शेर और राजपूत कभी वृद्ध (बूढ़े) नहीं होते'' किन्तु ऐसा लगता है कि हर कहावत को चरितार्थ होने में सदियों लग जाते हैं। जिन लोगों ने कहावतों को चरितार्थ किया है, उन्हें अंगुलियों पर गिना जा सकता है।

हमारे नायक के कार्य कितने विशिष्ट रहे होंगे, उनका संघर्ष कितना अद्वितीय रहा होगा, उनकी वीरता और उनका बलिदान कितना महान रहा होगा, इसका प्रमाण तो इतिहास के पन्ने हैं, वो सब कुछ बताते हैं। किन्तु बिहार के राजपूतों को धन्यवाद दिए बिना इस महान नायक का जीवन वृत्त अधूरा ही कहा जाएगा। बिहार के युवा राजपूतों ने ''कुँवर सेना'' का गठन कर समाज सेवा, समाज संगठन और समाज सुधार के साथ ही राष्ट्रवाद को प्रखर बनाने की दृष्टि से जो कार्य किए हैं और कर रहे हैं उसके लिये वे बधाई के पात्र तो हैं ही, वीरवर कुँवर सिंह पंवार को सही मायने में उनके द्वारा श्रद्धांजलि भी है जो यह बताते हैं कि शहीदों की शहादत न भूलने योग्य होती है, न उसे भूलना चाहिए।

हमारे बुजुर्गों द्वारा वीरता, शौर्यता, त्याग और बलिदान द्वारा जो भी अर्जन किया गया है यदि हम सिर्फ इसी के बलबूते पर अपने को बहुत कुछ समझ लेते हैं और पूर्वजों के प्रति न हमारे दिल में समर्पण की भावना है, न उन्हें हम वर्ष में एक बार भी याद करते हैं। वर्ष में एक दिन भी पूर्वजों के लिये नहीं दे सकते हैं तो हमसे ज्यादा कृतघ्न और कौन हो सकता है?

कुँवर सिंह पंवार के नेतृत्व में बिहार के राजपूतों ने अंग्रेजों के विरुद्ध जो सशस्त्र संघर्ष किया है वह इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ है। उनके संघर्ष की दास्तान, बिहार के कोने-कोने में गाँव-गाँव में चर्चित रही है। किन्तु इसे दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि राजपूतों का अंग्रेजों के विरुद्ध यह संघर्ष देश के कोने-कोने में न जाना जा सका है, न पढ़ा जा सका है। जन साधारण तो बहुत दूर की बात है, आम राजपूतों को भी कुंवर सिंह पंवार के संघर्ष, उनके त्याग, वीरता, साहस, शौर्य और बलिदान की कोई विशेष जानकारी नहीं है।

यह सही है कि राजस्थान और मालवा के राजा महाराजाओं ने अंग्रेजों के विरुद्ध कोई बड़ा सशस्त्र संघर्ष नहीं किया और न ही देश की आजादी के लिये लड़े जाने वाले

संग्राम में अंग्रेजों के विरुद्ध शस्त्र उठाए और न ही बहुत अधिक कुर्बानियाँ दी हैं या बलिदान किए हैं। यही कारण रहा कि जनसाधारण को यह कहने का अवसर मिल गया कि राजस्थान के राजपूतों ने अंग्रेजों के विरुद्ध कोई सशस्त्र संघर्ष नहीं किया। किन्तु ऐसा कहना सही नहीं है, क्योंकि राजस्थान और मालवा के राजा महाराजाओं की कहीं तो अंग्रेजों से संधि थी और कहीं दोस्ती। किन्तु फिर भी उनकी रियासतों के आम राजपूतों ने अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। किन्तु उनका संघर्ष कभी चर्चा का विषय नहीं बन सका। जब कुंवरसिंह पंवार जैसे महान योद्धा का इतिहास ही चर्चित नहीं हो सका तो साधारण राजपूत के संघर्ष और बलिदान को कौन लोकप्रिय बनाता?

अंग्रेजों के विरुद्ध बिहार में विद्रोह का प्रारम्भ 12 जून, 1857 को हुआ। 25 जुलाई को दानापुर छावनी में जब अंग्रेज अधिकारियों ने सैनिकों को शस्त्र जमा करा देने का आदेश दिया तो वहाँ भी विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी। 26 जुलाई को विद्रोही पलटन मुक्ति सेना के रूप में आरा पहुँच गई। मुक्ति सेना ने उसी क्षेत्र के जगदीशपुर निवासी 80 वर्षीय कुंवर सिंह पंवार को अपना सर्वोच्च नेता स्वीकार किया और प्रधान शासक के रूप में उनका अभिषेक किया। कुँवर सिंह छापामार युद्ध के विशेषज्ञ माने गए।

कुछ समय बाद कुंवर सिंह अपनी सेना की एक टुकड़ी के साथ युद्ध का मूल्यांकन करने तथा उसको नया आयाम देने के उद्देश्य से 1858 के प्रारम्भ में सासाराम, रोहतास, मिर्जापुर, रीवां, बांदा, कालपी, कानपुर के प्रमुख विद्रोही नायकों से संपर्क करते हुए मार्च के प्रारम्भ में लखनऊ पहुँचे, जहाँ उनका क्रांतिकारी नायकों ने बड़ा सम्मान किया। उन्हें आजमगढ़ जिले का शासनाधिकार मिला। कुँवर सिंह 17-18 मार्च को अतरोलिया पहुँचे। 26 मार्च को अंग्रेजी सेना को पराजित कर उन्होंने आजमगढ़ पर कब्जा कर लिया। कुँवर सिंह की सेना में 5 से 12 हजार तक सिपाही थे, जो उनकी बेजोड़ संगठन शक्ति के परिचायक थे।

15 अप्रेल, 1858 को अंग्रेज जनरल लुगाई से कुंवरसिंह का आजमगढ़ में ही सामना हो गया, जिसमें वे अविजित रहे, किन्तु अगले ही दिन उन्होंने आरा लौट जाने का कार्यक्रम बना लिया। वे 18 अप्रेल को वर्तमान में बलिया जिलांतर्गत नगरा, सिकंदपुर होते हुए मनिथर आए और वहीं पड़ाव डाल दिया। 20 अप्रेल को कैप्टन डगलस जो नगरा से ही कुंवरसिंह का पीछा कर रहा था उनकी सेना पर आक्रमण कर बैठा। किन्तु कुंवरसिंह अपनी सेना को बचाकर शिवपुर घाट पहुँचा देने में सफल हो गए। उन्होंने उसी दिन गंगा पार कर लिया, किन्तु नदी पार करते समय अंग्रेजी सेना ने उनकी नाव पर भयंकर गोलाबारी की, जिससे एक गोली कुंवरसिंह की बांह में लगी। गोली का जहर हाथ में फैलने से बचाने के लिये कुंवरसिंह ने खुद ही अपनी जख्मी बांह काटकर गंगा को समर्पित कर दी और गंगा पार हाथी पर सवार होकर अपने गृह नगर जगदीशपुर पहुँच गए। 23 अप्रेल को कंपनी सरकार की तोपों से सुसज्जित सेना उनका पीछा करते हुए जगदीशपुर तक पहुँच गई, जहाँ उनके छोटे भाई अमरसिंह ने अंग्रेजों का जोरदार मुकाबला किया। अंग्रेज कमांडर ली ग्रेंड भी मारा गया। किन्तु 24 अप्रेल को घायल कुंवरसिंह भी शहीद हो गए। वे विजेता के रूप में इस धरती से विदा हुए। भयंकर लड़ाईयों के बावजूद उन्होंने राजपूतों की शानदार परम्परा को बरकरार रखा। उनके सबसे बुरे विरोधी भी अंग्रेज महिलाओं एवं बच्चों का खून बहाने का आरोप उन पर नहीं लगा सकते थे।

उनकी शहादत के साथ ही सन् 1857 के उस अद्भुत सैनानी का अंत हो गया जिसका इतिहासकारों ने एक महान सैनिक नेता के रूप में मूल्यांकन किया है। ओजस्वी व्यक्तित्व तथा छापामार युद्ध में अपनी अद्भुत प्रवीणता तथा अनेक सैनिक सफलताओं से विद्रोह के प्रमुख स्तम्भ बन गए थे। अनेक इतिहासकारों ने यह स्वीकार किया है कि उनमें शिवाजी जैसा तेज था। वे इतने लोकप्रिय हुए कि भोजपुर जिला बिहार का बच्चा-बच्चा खेल-खेल में गाता है :-

चल कबड्डी आरा,
जहाँ के कुंवरसिंह मरदाना।

*

क्षात्रधर्म समाज की एक अनिवार्यता

– बाबूसिंह डांगरी

धर्म, संस्कृति, शिक्षा, कृषि, विज्ञान, चिकित्सा, ज्योतिष, ग्रह विज्ञान आदि में अग्रगण्य भारत वर्ष अपनी वीरता के कारण भी संसार में प्रसिद्ध है। यहाँ की धरती को वीर-प्रसूता कहा गया है। इतिहास साक्षी है कि इस देश ने जहाँ संसार को सत्य-अहिंसा, न्याय-नीति, धर्म-परायणता का पाठ पढ़ाया है, वहाँ असुरत्व के दमन के लिये, आत्म रक्षा के लिये उसने वीरता भी प्रदर्शित की है। वीरता हमारी शक्ति है, जितने हम संगठित रहे हैं उतनी ही हमारे धर्म तथा संस्कृति की रक्षा हुई है, किन्तु आज जो परिस्थितियाँ हमारे आगे दिखलाई पड़ रही हैं, उनसे भारी असंतोष होता है। अन्य आध्यात्मिक तत्वों की तरह राष्ट्र की वीर भावनाएँ भी घटती चली जा रही हैं।

वीर संस्कार प्रत्येक युग में आवश्यक रहे हैं। भगवान राम ने रावण की दुष्टता का दमन किया। कृष्ण ने कौरवों का मान-मर्दन किया था। शिवाजी, राणा प्रताप, झाँसी की रानी की वीरतापूर्ण कहानियाँ इतिहास के पन्नों पर अंकित हैं और वे युग-युगान्तरों तक असत्य, अनीति और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा देती रहेंगी। यहाँ वीर भावना केवल काव्य का विषय नहीं, वह सर्व-साधारण की उदात्त जीवन पद्धति रही है। शत्रु से युद्ध करते हुए मृत्यु का आलिंगन करना यहाँ शोक का नहीं अह्लाद और उत्सव का विषय माना जाता रहा है। शास्त्रों का गहन अध्ययन करने वाले पण्डित अपनी पीठ पर तरकस और कन्धों पर प्रत्येक क्षण धनुष लिए घूमते थे ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे दुष्टों से संघर्ष भी कर सकें। जो उपदेश से न मानें उन्हें शक्ति और बल के द्वारा भी सिखाया जा सके। ''शक्ति और सरस्वती की'' समवेत साधना इस देश की विशेषता रही है।

माताएँ अपने बालकों को पालने में झुलाती हुई कहती थीं-

इला न देणी आपणी, हालरिया हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाई-पाय।।

ओ! मेरे प्यारे पुत्र धरती शत्रु के हाथ न जाने देना चाहे तेरे प्राण क्यों न चले जायें। ऐसी मृत्यु तो मनुष्य का बड़प्पन है। माताओं के इन शब्दों में क्या ही अनोखी शान थी। कितना गौरव था उनकी आत्माओं में। तभी तो उनकी आत्मा का रस पीकर पोषित होने वाले बालक भी इतनी प्रौढ़-भावनाओं के होते थे जो इस संसार में जीवन और मृत्यु को खेल समझते थे। उन्हें न जीवन के प्रति कोई राग होता था, न मृत्यु से भय। देश की रक्षा के लिये, धर्म की रक्षा के लिये सबसे आगे बढ़कर प्राण देने की प्रतिद्वन्द्विता होती थी। मौत भी उन शूरवीरों की वीरता के आगे सर झुका देती थी।

किन्तु आज वह संस्कार न जाने कहाँ लोप होते जा रहे हैं। न तो हमारी माताओं में वह तेजस्विता रही है कि बेटों को जीवन संग्राम के लिये विधिवत तैयार कर सकें और न अब वह वातावरण ही रहा है। अपने से गई-गुजरी स्थिति के व्यक्ति को डराने-धमकाने और रौब दिखाने को ही लोग वीरता समझते हैं। हतवीर्य बालक अल्प अवस्था से ही कायर, कमजोर और जरा-सी परिस्थिति में घबड़ा जाने वाले होते हैं। लड़ाई तो वह स्वप्न में भी देख लें, तो दिल धक-धक करने लगे। इस साहस की कमी का एक ही कारण है- वीरतापूर्ण संस्कारों का जागरण न किया जाना। पहले शिक्षा के साथ युद्ध का भी अभ्यास कराया जाता था। शास्त्र के साथ शस्त्र की भी पूजा होती थी। छोटे-छोटे बालकों को प्रारम्भ से ही कठोर जीवन बिताने का अभ्यास कराया जाता था। कथा-कहानियाँ भी उन्हें ऐसी ही सुनाई तथा पढ़ाई जाती थीं जो सच्ची और घटनात्मक होती थी। इससे बालकों का साहस जाग्रत होता था और वीरता के संस्कार परिपुष्ट होते थे। आहार आदि की व्यवस्था भी ऐसी ही होती थी, जिससे

उनका शरीर शक्तिशाली बना रहता था। आने वाली मुसीबत का वे वरदान की तरह स्वागत करते थे। प्रत्येक नवयुवक इस प्रतीक्षा में रहा करता था कि कब कोई ऐसा समय आये जब उन्हें अपनी प्रतिभा एवं शक्ति प्रदर्शन का अवसर मिले। उनका शौर्य सदैव जाग्रत बना रहता था, पर वैसी परिस्थितियाँ अब कहीं दिखाई नहीं देतीं।

वीरता के संस्कार संघर्ष, शक्ति और कठोर जीवन पद्धति से उभरकर आते हैं, किन्तु अब उनमें से एक भी परिस्थिति दिखाई नहीं देतीं। लोगों के मनोबल इतने गिरे हुए हैं कि अपने सामने अन्याय होता हुआ देखकर भी तमाशबीन की तरह चुपचाप खड़े रहते हैं, बुरे तत्वों और बुराइयों से टक्कर लेने की उनकी जरा भी हिम्मत नहीं पड़ती। विलासिता, राग-रंग, सिनेमा-टी.वी. शौकिनी बढ़ने के कारण लोगों के दिल बिल्कुल सूक्ष्म होते जा रहे हैं। अंधकार में पैर रखते हुए काँपते हैं। शरीर में थोड़ी-सी पीड़ा हो जाए तो चिल्लाते, रोते और कराहते हैं मानो उन पर कोई मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा है। शरीरों में सहनशक्ति रही नहीं, हृदय कमजोर पड़ गये हैं, सरल जीवन में ही सुख अनुभव करने की भद्दी आदतों ने आज देश की वीर भावनाओं को मटियामेट कर रखा है।

क्षात्रधर्म मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकता है। उसका पालन न किया जाए तो न देश की सुरक्षा संभव हो सकती है न जाति, धर्म और संस्कृति की। ''वीर-भोग्या-वसुंधरा'' की कहावत के अनुसार धरती पर जीने का सच्चा आनन्द वीरों को मिलता है, पर यह वीरता उद्धतपन, अत्याचार या डाकुओं जैसा साहस नहीं है। राणा सांगा, रणजीतसिंह, गोरा बादल, फतेहसिंह, जोरावरसिंह, भगतसिंह, मेजर शैतानसिंह तथा पूनमसिंह की तरह किसी आदर्श की रक्षा के लिये आत्म-बलिदान की भावना का नाम ही वीरता है। प्रेम और मृत्यु वीरों के लिये समान होते हैं। धर्म और कर्तव्य-पालन के लिये जो बड़े से बड़े प्रलोभन को ठुकरा सकता है, जिसे न जीवन में आसक्ति होती है न मौत से घबराहट, वही सच्चा वीर है। वीरता से मनुष्य की स्थिर भावना और उसकी निष्ठा की परीक्षा होती है। जो इस कसौटी पर खरे उतरते हैं उन्हें ही वीर कहा जाएगा, फिर भले ही रणक्षेत्र में प्राण त्याग करें या सामाजिक जीवन के किसी सत्य आदर्श के लिये संघर्ष करते हुए जीवन बलिदान करना पड़े।

हमारी इस शानदार परम्परा का ह्रास नहीं होना चाहिए अन्यथा इस देश का गौरव मिट जाएगा। हमारी भावनाओं में यदि वह शक्ति न हुई जिससे आस-पास फैली हुई दुष्टता से मुकाबला किया जाता है तो हमारे हित भी सुरक्षित न रह सकेंगे। निर्बल चिड़ियों को जिस तरह बाज झपट ले जाता है उसी तरह हम लूट लिए जायेंगे। कायर को कहीं शरण नहीं मिलती। अपनी रक्षा मनुष्य स्वयं कर सकता है। अपने मुकाबले के लिये उसे स्वयं कठोर और साहसी बनना पड़ता है। दूसरों के सहारे जिन्दगी बिताने में कुछ आनन्द भी नहीं आता। यह संभव भी नहीं कि किसी दूसरे व्यक्ति या राष्ट्र का संरक्षण सदैव ही मिलता रहे क्योंकि दूसरों के भी अपने हित होते हैं और उनकी सुरक्षा भी उन्हें करनी पड़ती है। अत: हमारे लिये परम आवश्यक है कि हम अपने जीवन में वीरता के संस्कारों का स्वत: जागरण करें और अपने पैरों पर आप खड़े हों। अब वह युग आ गया है जब हमें इस बात पर गंभीरता से विचार करना है कि आत्म-रक्षा और आत्म-कल्याण के योग्य हम में शक्ति सामर्थ्य और उत्कट भावनायें जाग्रत हों। आत्म पतन की ओर इसी गति से बढ़ते रहे, तो जो गौरव अभी तक सभी जातियों के समक्ष हम को जीवित किए हुए है वह भी नष्ट हो जायेगा और हमारी गणना संसार के निकृष्ट श्रेणी के लोगों में होने लगेगी।

✻

क्षात्रधर्म की शान रखाने वीर जाति फिर जाग उठे।
हल्दीघाटी के नालों से हर-हर की हुंकार उठे।।

विचार-सरिता

(त्रिपञ्चाशत् लहरी)

– विचारक

मनुष्य मात्र का लक्ष्य आत्मोपलब्धि है। जिसके लिये शास्त्रों में अनेक उपाय सुझाए गए हैं। जैसे- ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग, ध्यान योग व प्रार्थना तथा शरणागति आदि ऐसे साधन हैं जो साधक को परमात्मप्राप्ति की अनुभूति होने में सहायक बताए गए हैं। विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों में विभिन्न विधियाँ सुझाई गई हैं। उपरोक्त सभी साधनों में क्रिया का महत्त्व है। कुछ न कुछ करने की महत्ता है। हमारा भी ऐसा ही सोच हो गया है कि परमात्मा हमसे बिछुड़ गए हैं अथवा रुष्ट हो गए हैं। अब उन्हें ढूंढ़ना पड़ेगा अथवा पूजा आदि से उन्हें प्रसन्न करना पड़ेगा तब जाकर वे हमें दृश्य रूप में दर्शन देंगे।

परमात्मा न तो कर्म साध्य हैं। न क्रिया साध्य हैं। परमात्मा करण साध्य भी नहीं हैं। विधि, क्रिया, पूजा, प्रार्थना, कर्म, भक्ति, भजन-कीर्तन, हठयोग आदि सभी भटकाने वाली क्रियाएँ हैं। क्रिया मात्र अहंकार को बढाती है। अहंकार तो सदैव आत्मज्ञान में बाधक रहा है। सभी क्रियाएँ आडम्बर व दिखावा मात्र हैं। साधक अपने आपको धार्मिक दिखाने के लिये पूजा-पाठ आदि का आडम्बर करता है और परिणाम शून्य आता है क्योंकि वहाँ अहंकार को बढ़ावा मिल रहा है।

आत्मोपलब्धि के लिये बोध-मात्र पर्याप्त है। अन्धकार का कोई अस्तित्व नहीं है। वह प्रकाश का अभाव-मात्र है। अंधकार को हटाने का सीधा प्रयत्न करना मूर्खता है। अन्धकार को हटाने में किसी क्रिया या हठ की आवश्यकता नहीं। वहाँ तो एक दीपक जला दो, अन्धकार लुप्त हो जाएगा। प्रकाश के अभाव का नाम अन्धकार है अत: वहाँ अन्धकार को हटाने में अन्य परिश्रम निरर्थक हैं, बस केवल प्रकाश करने की आवश्यकता है और प्रकाश होते ही अन्धकार लुप्त हो जाएगा। किन्तु नासमझी में लोग दीपक जलाना छोड़कर अन्धकार को सीधा हटाने की प्रक्रिया में सब साधनाएँ कर रहे हैं जो व्यर्थ ही नहीं अपितु मूर्खता-पूर्ण भी हैं। आत्मज्ञान के लिये केवल ज्ञान का प्रकाश लाना ही पर्याप्त है जिससे सारा अज्ञानरूपी अन्धकार लुप्तहो जायेगा तथा साधक स्व-चेतना में विश्राम कर शान्ति को प्राप्त होगा। ज्ञान-प्राप्ति का मार्ग केवल बोध है। स्व: की जाग्रति ही आत्म-बोध है।

आत्मा कहीं खोई नहीं है। अज्ञान के कारण वह विस्मृत हो गई है। उस तत्व की पुन: स्मृति ही आत्मबोध है। यदि एक बार उस तत्व की स्मृति हो गई तो संसार का यह समस्त मायाजाल रूपी अन्धकार एक क्षण में विलुप्त हो जायेगा एवं साधक को अपनी वास्तविक स्थिति का पता चल जायेगा। रस्सी में सर्प की जो भ्रान्ति होती है उसका अस्तित्व तभी तक है जब तक यथार्थ ज्ञान नहीं है। रस्सी का ज्ञान होते ही सर्प की निवृति है और सर्प के काटने के भय की निवृति भी तत्क्षण है। ऐसे ही हम जिस मृत्यु से भयभीत हैं, डरे हुए हैं, काम, क्रोध आदि से जल रहे हैं यह सब हमें हमारे स्वरूप के अज्ञान का परिणाम है। दुनिया का शोषण कर पेट भरने की भ्रान्ति, चोरी, ठगी, बलात्कार, हत्या आदि की प्रवृति का कारण भी अज्ञान ही है। यदि हम यह अज्ञान, भ्रान्ति मिटाकर अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लें तो हमें स्वयं पर हंसी आयेगी कि हम किस प्रकार अज्ञानवश यह सब करते रहे, जो हमें नहीं करना चाहिए था।

अध्यात्म-जगत में तीन ही निष्ठाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। भगवद्गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म, भक्ति व ज्ञान की बात कही है। अध्यात्म-जगत में दो प्रकार के साधक कहे गए हैं। बहिर्मुखी व दूसरे अन्तर्मुखी। बहिर्मुखी के लिये कर्म व भक्ति-मार्ग अनुकूल पड़ता है तथा अन्तर्मुखी के लिये ध्यान अनुकूल है। बहिर्मुखी को ज्ञान या बोध का मार्ग समझ में नहीं आता। प्रज्ञावान प्रखर बुद्धि एवं चेतना वाला साधक ही इसे ग्रहण कर सकता है।

(शेष पृष्ठ 30 पर)

महालक्ष्मी मन्दिर-कोल्हापुर

– स्वागी गोपाल आनन्द बाबा

विश्व का सर्वाधिक प्राचीन महालक्ष्मी मन्दिर भारत के महाराष्ट्र (प्रदेश/राज्य) में कोल्हापुर में अवस्थित है। यह मन्दिर 1300 वर्ष पूर्व क्षत्रिय शासक, चालुक्य राजवंश, राजा कर्णदेव ने बनवाया था। इसके गर्भगृह में विद्यमान श्रीविग्रह को 2,000 वर्ष पुराना माना जाता है। मूर्ति काले पत्थर की है जो लगभग 3 फीट ऊँची व 40 किलोग्राम वजन की है। मन्दिर का विस्तार ईस्वी की 11वीं सदी में कोल्हापुर के शिलाहार राजवंश के समय में हुआ था। महालक्ष्मी मन्दिर का निर्माण इस प्रकार किया गया है कि भगवान भुवन भास्कर सूर्य भी वर्ष में दो बार यहाँ लक्ष्मी-दर्शन करने आते हैं। सूर्य की किरणें गर्भगृह में पहुँचती हैं। उत्तरायण और दक्षिणायन सूर्य की किरणें तीन-तीन दिन के लिये गर्भगृह तक आती हैं। प्रथम दिन चरणों तक, द्वितीय दिन कमर तक और तृतीय दिन मस्तक तक।

भारतवर्ष में जितने भी मन्दिर, मठ, स्मारक आदि ऐतिहासिक संरचनाएँ प्राप्त होती हैं, प्रायः सभी प्राचीन क्षत्रिय शासकों-राजाओं द्वारा निर्मित हैं। क्षत्रिय, राजन्यः, राजपुत्रः एवं राजपूत पर्यायवाची हैं। आज भी बंगाल, ओड़िसा, असम, पूर्वोत्तर राज्य, आन्ध्रपेदश, तेलंगाना, कर्नाटक, तमिलनाडू, केरल में इन्हें क्षत्रिय ही कहा जाता है, जबकि बाकी के सभी प्रदेशों-राज्यों में इन्हें राजपूत कहा जाता है।

कोल्हापुर का यह महालक्ष्मी मन्दिर सदियों की हुई उथल-पुथल में भी बचा रहा। सन् 1955 ई. तक छत्रपति शिवाजी महाराज के वंशज महालक्ष्मी की पूजा करते रहे यानि कोल्हापुर के शासक के संरक्षण में यह था, पश्चात् सरकार की देखरेख में आ गया। वस्तुतः महालक्ष्मी की यह मूर्ति दो फीट नौ इंच है। जो 2,000 वर्ष से अधिक प्राचीन मानी जाती है। मूर्ति में महालक्ष्मी की चार भुजाएँ हैं इनमें महालक्ष्मी के हाथों में तलवार (खड़ग), गदा, ढाल आदि शस्त्र हैं। मस्तक पर शिवलिङ्ग, नाग और पीछे सिंह है। काले पत्थर पर अद्भुत नक्काशी सहस्रों वर्ष प्राचीन भारतीय किंबा हिन्दू स्थापत्य की बेजोड़ (अद्भुत) उदाहरण है। मंदिर के मुख्य गर्भगृह में महालक्ष्मी विराजमान हैं, उनके दाएँ।-बाएँ दो अलग-अलग गर्भगृहों में महाकाली और महासरस्वती के विग्रह हैं। महालक्ष्मी का मुख पश्चिम में है, मुख्य द्वार 500 फीट दूर है। वर्ष में दो बार उत्तरायण और दक्षिणायन में सूर्यास्त के समय सूर्य विशेष स्थिति में आता है, तब किरणें मुख्य द्वार से होती हुई महालक्ष्मी पर पड़ती हैं। पाँच मिनट के किरणोत्सव को देखने सहस्रों लोग एकत्र होते हैं, विराट मेला का-सा दृश्य उपस्थित होता है।

लगभग 1300 वर्ष प्राचीन दुनिया के सबसे पुराने महालक्ष्मी मन्दिर में प्रतिदिन ही दीपावली की रौनक होती है। यहाँ अनेक कारणों से प्रतिदिन लगभग 40 हजार (सहस्र) श्रद्धालु भक्तगण यहाँ पधारते हैं। यहाँ सबसे महत्त्वपूर्ण है मन्दिर का वास्तु। वर्ष में दो बार नवम्बर और जनवरी में तीन दिनों तक अस्ताचल सूर्य की किरणें गर्भगृह में महालक्ष्मी की प्रतिमा को स्पर्श करती हैं। नवम्बर में 9, 10, 11 तारीख को और जनवरी-फरवरी में 31 जनवरी व 1 और 2 फरवरी को। प्रथम दिन सूर्य किरणें महालक्ष्मी के चरणों को स्पर्श करती हैं, दूसरे दिन कमर तक आती हैं और तीसरे दिन चेहरे को आलोकित करते हुए गुजर जाती हैं।

गर्भगृह में स्थित प्रतिमा और मन्दिर परिसर के पश्चिमी द्वार की दूरी ढाई सौ फीट से अधिक है। किरणोत्सव के दोनों अवसरों पर परिसर की बत्तियाँ बुझा दी जाती हैं। महाराष्ट्र की उत्सव परम्परा में कोल्हापुर का महालक्ष्मी मंदिर झिलमिलाती कड़ी है। मन्दिर की स्थापना के समय से ही यहाँ पूजा की परम्परा सर्वदा बनी रही। मन्दिर की साप्ताहिक पूजा में 54 पुरोहित परिवार सम्मिलित रहे हैं। पुजारियों का मानना है कि महालक्ष्मी की प्रतिमा मन्दिर निर्माण से भी पहले की है। तभी से यहाँ पूजा की अटूट परम्परा है। इतिहासकार बताते हैं कि मूल मन्दिर का निर्माण सातवीं सदी (ई.) में कोल्हापुर के शिलाहार राजवंश

के क्षत्रिय नरेश के समय मंदिर का विस्तार हुआ। शिलाहार वंश के राजा कर्नाटक में कल्याण चालुक्यों के मातहत कोल्हापुर में शासन करते थे। मन्दिर के आसपास शिलाहार राजवंश के अतिरिक्त देवगिरि के प्रसिद्ध यादव राजवंश (यदुवंशी क्षत्रिय राजपूत) के भी शिलालेख मिले हैं। तेरहवीं सदी (ई.) तक शिलाहार राजवंश का 'राज' चला, लेकिन बाद में देवगिरि के यादवों ने उनका अध्याय समाप्त कर दिया। कोल्हापुर का महालक्ष्मी मन्दिर बीच की सदियों में हुई उथल-पुथल के कालखण्ड में भी बचा रहा। सन् 1715 ई. में विजयदशमी (आश्विन-शारदेय नवरात्र) के दिन इसकी पुन: स्थापना का उल्लेख है। देवगिरि में यादव राजवंश के पराभव के बाद एक अंधायुग है, लेकिन बाद में छत्रपति शिव वा जी (शिव भूपति-शिवराय) यानि शिवाजी के उदय ने पुरातन परम्पराओं और स्थापत्य को एक नया जीवन दिया। कई प्राचीन धरोहर व स्मारक खण्डित होने से बचे रहे। पूजा प्रथाएँ भी स्थापित रहीं।

प्रतिमा (विग्रह) को 'घर्षण' से क्षति न हो, अत: समय-समय पर विशेष ''लेप'' लगाया जाता है। चार वर्ष पूर्व औरंगाबाद के पुरातत्व विभाग ने मूर्ति पर रासायनिक प्रक्रिया की। इसके पूर्व सन् 1955 ई. में भी यह रासायनिक लेप लगाया गया था। महालक्ष्मी की पालकी सोने की है। इसमें 26 किलो सोना लगा है। प्रत्येक नवरात्रि के उत्सव काल में माताजी की शोभायात्रा कोल्हापुर नगर में निकाली जाती है।

कोल्हापुर में छत्रपति शिव बाप जी (शिव बा जी)-शिवराय (शिवाजी) के वंशज आज भी हैं। महालक्ष्मी मन्दिर के पास भव्य राजवाड़ी (राजबड़ी-राजवाटी) उन्हीं का स्थान है। श्रीमंत संभाजी राजे शिवाजी की वंश परम्परा में यहाँ की एक सम्मानीय हस्ती हैं। महालक्ष्मी मन्दिर से उनकी पीढ़ियों के सम्बन्ध हैं। भोंसला राजवंश को मेवाड़ का सिसोदिया वंशी माना जाता है। छत्रपति के रिकार्ड में महालक्ष्मी को 'अम्बादेवी देवघर' कहा जाता है। सन् 1955 ई. तक प्राचीन मन्दिर छत्रपति परिवार के ही अन्तर्गत था, अब सरकार के पास है। अम्बाबाई देवघर में राष्ट्रपति और छत्रपति ही हैं, जो सामान्य परिधान में गर्भगृह तक जा सकते हैं। पश्चिम महाराष्ट्र देवस्थापन समिति के वर्तमान प्रबंधक श्रीमंत धनाजी जाधव नौ पीढ़ियों से यहाँ देखरेख कर रहे हैं। उनके अनुसार यह देवी की 51 शक्तिपीठों में से एक है।

दीपावली की रात्रि दो बजे मन्दिर के शिखर पर दीपक प्रकाशित होता है, जो अगली पूर्णिमा तक नियमित रूप से जलता है। (यानि मानव दिवाली से देव दिवाली तक)। यह मन्दिर में दीपोत्सव का संदेश है। बैकुण्ठ चतुर्दशी के दिन पूरा परिसर दीपों से जगमगाता है। यहाँ नवरात्रि भी दीपावली-सी रौनकदार होती है। तब देवी हर दिन पालकी में बाहर आकर पूरे परिसर में भ्रमण करती हैं। नवरात्रि की पंचमी के दिन महालक्ष्मी स्वर्ण पालकी में सवार होकर सात कि.मी. दूर त्रम्बोली माताजी से मिलने जाती हैं। सामान्य दिनों में प्रात: चार बजे से ही महालक्ष्मी के नियमित दर्शन शुरू हो जाते हैं। दूर-दूर से आए लोगों की पंक्तियाँ बाहर तक खड़ी दिखाई पड़ती हैं। साढ़े आठ बजे प्रात:काल देवी को स्नान कराया जाता है। पश्चात पुरोहित उनके शृंगार में जुट जाते हैं। दर्शन का क्रम चलता रहता है। पूर्वाह्न साढ़े ग्यारह बजे तक उनके दूसरे स्नान की बारी आती है और एक बार फिर देवी नए रूप में सजी-संवरी होती हैं। कभी पैठणी, कभी कांजीवरम और कभी पेशवाई रंगीन साड़ियों में सजी-धजी। रात्रि नौ बजे शयन का समय है और अगले एक घण्टे में निद्रा आरती के साथ ही मन्दिर के पट (दरवाजा) बन्द हो जाते हैं। इस नियमित दिनचर्या में तीज-त्योहार और उत्सव के दिनों की रौनक सदियों पुरानी पूजा-परम्परा को एक अलग भव्यता प्रदान करती है। पुराणों से ज्ञात होता है कि महालक्ष्मी पहले तिरूपति में विराजती थीं। किसी बात पर भगवान विष्णु से अनबन हो गई तब रूठकर कोल्हापुर आ गईं। इसी वजह से हर दिवाली में तिरूपति देवस्थान की ओर से महालक्ष्मी के लिये शाल भेजी जाती है। तिरूपति बालाजी के दर्शनार्थी-जनों को कोल्हापुर महालक्ष्मी मन्दिर दर्शनार्थ अवश्य जाना चाहिए।

भारतीय संस्कृति की श्रद्धास्पद परम्परा : चरण स्पर्श

– डॉ. रमाशंकर पाण्डेय

हमारी भारतीय संस्कृति में चरण-स्पर्श की प्रथा वेदों के समय से ही अधिक पुरानी है। अथर्ववेद में मानव-जीवन की आचार-संहिता का एक खण्ड विशेष है, जिसमें नमन को प्राथमिकता दी गई है। वेद के ये सूत्र हैं- ***गुरुदेवो भव, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव*** आदि सूत्रों से क्रमश: सबको प्रणाम, दण्डवत् एवं चरण-स्पर्श है। आज के वैज्ञानिक भी इस बात को प्रमाणित करते हैं कि मानव-शरीर में हाथ की हथेली और अंगुलियाँ, पैर के तलवे एवं अंगुलियाँ अत्यधिक संवेदनशील अंग हैं। हम किसी भी चीज के कोमल, कठोर, शीतल, गर्म आदि के गुणों से युक्त होने का अनुभव हाथ या पैर से स्पर्श कर प्राप्त कर लेते हैं। इसी भाँति जब हम किसी श्रेष्ठजन का चरण-स्पर्श करते हैं, तब उनके आशीष के साथ-साथ उत्साहित मन से निकली ऊर्जा हाथ-पैर की अंगुलियों के स्पर्श के जरिये हमारे शरीर में आ जाती है और उस शक्ति के द्वारा हम अपने को स्फूर्त महसूस करते हैं। इसके अलावा चरण-स्पर्श करते हुए जाने-अनजाने कई तरह की व्यायाम-प्रक्रिया भी हो जाती है। नियम के अनुसार चरण-स्पर्श करने के लिये हमें वज्रासन, भुजंगासन, सूर्य-नमस्कार आसन की विभिन्न मुद्राओं की स्थिति से होते हुए चरण-स्पर्श करना चाहिए। इन क्रियाओं से शरीर स्वस्थ रहता है। यह हमें मालूम होना चाहिये कि चरण-स्पर्श एक परम्परा का निर्वाह-मात्र नहीं है, वरन् यह आस्था एवं श्रद्धाभावना से प्रसन्नचित्त हो पूजा या भक्ति-निवेदन का प्रथम सोपान है। सत्ययुग और त्रेताकाल में बच्चों को आचार्य के समीप ले जाकर उनसे उनका चरण-स्पर्श कराया जाता था। आचार्य की आशीष मिलती थी और बच्चे प्राय: कुशाग्रबुद्धि, बलिष्ठ, पौरुषपूर्ण एवं नम्र होते थे। बच्चे भी चरण-स्पर्श करते हुए अपने को गौरवान्वित समझते थे। वे बड़ों का चरण-स्पर्श वाला अवसर अपने हाथ से जाने देना नहीं चाहते थे। घर पर होश सम्भालते ही वे बड़ों को ऐसा करते देखते थे। अपनी अनुकरण एवं स्पर्धा की भावना से परिपूर्ण वे बच्चे एक प्रकार से चरण-स्पर्श के अभ्यस्त हो जाते थे। यह उनका अभ्यास आजीवन बना रहता था। आज के इस घोर भौतिकवादी समाज में जहाँ पुरानी परम्पराओं को अंधविश्वास एवं दकियानूसी कह दरकिनार कर दिया जाता है, वहीं कुछ परिवारों में यह परम्परा कायम है।

चरण-स्पर्श के प्रमाण त्रेतायुग में पाये जाते हैं। चरण-स्पर्श एवं दण्डवत् का वर्णन रामचरितमानस के केवट-प्रसंग में भी है। नारदजी ने भगवान के चरण गहे थे। सीताजी ने भी स्वयंवर के पहले गिरिजा पूजन के लिये गई थी और वहाँ माता गिरिजा का चरण-स्पर्श किया था। चरण-स्पर्श की यह परम्परा सत्ययुग और द्वापरयुग में भी बनी रही। महाभारत में यह कथा है कि यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा-हे धर्मराज! व्यक्ति महान एवं शक्तिशाली कैसे बन सकता है? धर्मराज ने उत्तर दिया-''हे यक्ष, माता-पिता-गुरु एवं वृद्धजनों के चरण-स्पर्श से।'' यक्ष ने फिर प्रश्न किया-हे धर्मराज वृद्धजन से आपका क्या तात्पर्य है? युधिष्ठिर ने कहा-''हे यक्ष, वृद्धजन गुणों के अनुसार छह हैं- वयोवृद्ध, आश्रमवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, बलवृद्ध, धनवृद्ध तथा ऐश्वर्श्यवृद्ध। चरण-स्पर्श के साथ-साथ निश्छलता, विनम्रता एवं प्रेमभाव होना अति आवश्यक है।'' महाभारत में ही एक दूसरा प्रसंग है कि जब अर्जुन ने देखा कि पितामह के रहते पाण्डवों की जीत असम्भव है, तो वह बहुत दु:खी हो उठे। उन्होंने अपने दु:ख का कारण सखा कृष्ण को सुनाया। यह सुनकर कृष्ण ने कहा-''हे अर्जुन, पितामह जब ब्रह्ममुहूर्त में ध्यानमग्न रहें, तब तुम उसी समय युद्ध में जीत की कामना लेकर उनके पास जाओ। जब उनका ध्यान टूटे, तब तुम विनम्रता से उनके चण-स्पर्श करो। तुम सफलता प्राप्त करोगे।''

(शेष पृष्ठ 34 पर)

नवरात्रि-शक्ति उपासना पर्व

- संकलित

परमसत्ता को माँ के रूप में देखने और उस रूप में उसकी आराधना करने का प्रचलन भारतीय संस्कृति की एक मौलिक विशेषता है, जिसकी मिसाल विश्व के अन्य धर्मों या आस्था-परम्पराओं में खोज पाना दुर्लभ है। वहाँ ईश्वर को पिता या जगत् के स्वामी के रूप में ही देखा और पूजा जाता है, माँ के रूप में नहीं। श्री अरविंद की दृष्टि में यह भारत की ही विशेषता है। नवरात्रि के रूप में तो इसकी आराधना का विशिष्ट पर्व मनाया जाता है। इसे शक्ति पर्व भी कहा जाता है। भारत में आदिकाल से चला आ रहा शक्ति पूजा का यह पर्व आज भी अगम्य आस्था के साथ जारी है। हमारी संस्कृति का प्रत्येक कालखंड इसकी चर्चा, विवेचना एवं साधना से भरा पड़ा है।

भारतीय संस्कृति के आदि ग्रंथ ऋग्वेद के दशम मंडल में एक पूरा सूक्त शक्ति उपासना पर है, जिसमें शक्ति की व्यापकता का सुंदर विवेचन किया गया है, ''मैं ही ब्रह्मद्वेषी को मारने के लिये रुद्र का धनुष चढ़ाती हूँ। मैं ही सेनाओं को मैदान में लाकर खड़ा करती हूँ। मैं ही आकाश और पृथ्वी में सर्वत्र व्याप्त हूँ। मैं ही संपूर्ण जगत् की अधीश्वरी हूँ। मैं परब्रह्म को अपनेसे अभिन्न रूप में जानने वाली पूजनीय देवताओं में प्रधान हूँ। संपूर्ण भूतों में मेरा प्रवेश है।'' इसी तरह ऋग्वेद के देवी सूक्त, उषा सूक्त तथा सामवेद के रात्रि सूक्त में शक्ति साधना का उल्लेख आता है।

कुरुक्षेत्र में महाभारत युद्ध आरम्भ होने से पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण ने दुर्गा की उपासना की थी, ताकि युद्ध में अर्जुन विजयी हो। भगवान् राम द्वारा दुर्गा उपासना का उल्लेख अनेक रामकथाओं में मिलता है। बौद्ध धर्म में मातृशक्ति की पूजा विविध रूपों में प्रचलित रही है। बोद्ध तंत्रों में तो शक्ति को शीर्ष स्थान प्राप्त रहा है। पुराणों में शक्ति उपासना की महिमा का विस्तार से वर्णन है।

देवी भागवत में शक्ति के लिये अनन्य भक्ति भाव प्रदर्शित किया गया है। मार्कण्डेय पुराण में शक्ति की व्यापकता का उल्लेख तीन रूपों में किया गया है, महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती। महादुर्गा आसुरी शक्तियों की संहारक हैं, अहंकार का नाश करती हैं और ज्ञान की खड्ग से अज्ञान को नष्ट करती हैं। महासरस्वती विवेक की देवी हैं। विद्या, साहित्य, संगीत, विवेक और ज्ञान की अधिष्ठात्री हैं। महालक्ष्मी ऐश्वर्य की देवी हैं, मार्कण्डेय पुराण में देवी माहात्म्य की विशद विवेचना को 'दुर्गा सप्तशती' नाम दिया गया है। स्कंद पुराण में दुर्गा के आविर्भाव का वर्णन है। ब्रह्मपुराण-ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि में भी देवी के अवतरण का उल्लेख मिलता है। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार, ब्रह्माजी मार्कण्डेय ऋषि को कहते हैं कि देवी का पहला रूप शैलपुत्री है। इस क्रम में अन्य रूप ब्रह्मचारिणी, चंद्रघंटा, कुष्मांडा, स्कंदमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदात्री हैं। इन रूपों को नौ दुर्गा के रूप में पूजा जाता है। दुर्गा की उत्पत्ति के संदर्भ में शिव पुराण में रुद्र संहिता के पंचम अध्याय में सुंदर आख्यान मिलता है।

वस्तुत: शक्ति का विस्तार, वैभव एवं लीला अनंत है। सृष्टि की तमाम व्यापकता एवं विविधता के मूल में एक ही शक्ति विद्यमान है, इसे ब्रह्म की क्रियाशक्ति के रूप में, आदिशक्ति के रूप में जाना जाता है। यही विविध अवसरों पर, विविध प्रयोजनों के लिये अलग-अलग नाम, रूप एवं शक्ति धारण करके प्रकट होती है। प्रकृति की जितनी भी शक्तियाँ हैं, वे सब इसी की अभिव्यक्ति हैं। इनका स्फुरण, उद्भव एवं जन्म इसी शक्ति के गर्भ से होता है। सृष्टि का पोषण एवं संवर्द्धन इसी के बल पर होता है। यही इसकी रक्षा करती है। यही ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश की जननी है। सृष्टिकर्त्ता इस सृजनकारिणी शक्ति से हीन होने पर सृष्टिकर्त्ता नहीं रह जाता है। स्कंद पुराण में उल्लेख आता है कि

शक्तिसे विहीन शिव शव के समान हो जाते हैं, शिव का शिवत्व महाशक्ति के सान्निध्य से ही जाग्रत् होता है।

देवी के रूप को सर्वत्र व्याप्त देखा जा सकता है। समस्त प्राणियों में यही चेतना, बुद्धि, स्मृति, धृति, शक्ति, श्रद्धा, कांति, तुष्टि, दया आदि रूपों में स्थित है। प्रत्येक प्राणी के भीतर मातृशक्ति एवं मातृप्रवृत्ति के रूप में ही प्रवाहित और प्रकाशित है। यह विविध रूपधारिणी है। सत, रज एवं तम गुणों के आधार पर यह क्रमश: महासरस्वती, महालक्ष्मी एवं महाकाली के रूप में अभिव्यक्त होती है।

नवरात्रि की ऋतु संधि की वेला स्वयं में विशिष्टता लिये होती है। इस समय समूची प्रकृति अपने चरम उत्कर्ष पर होती है। इन्हीं दिनों काया अपने अंदर इकट्ठे विजातीय तत्त्व को बाहर फेंकने के लिये जोर मारती है। आध्यात्मिक साधनाओं के लिय भी इस ऋतु संधि-नवरात्रि से बढ़कर और कोई अवसर नहीं हो सकता। यदि इसके साथ युगसंधि का दुर्लभ सुयोग भी जुड़ा हो, तो इसका महत्त्व शतगुणित हो जाता है। इसलिए नवरात्रि के इस पुण्य पर्व को हाथ से न जाने दिया जाए व समुचित तैयारी के साथ इसकी आत्मशोधन एवं आत्मोत्कर्ष साधना में भागीदार हुआ जाए, तो यह समझदारी वाला कदम होगा।

इस अवधि में उपवास के नियम का पालन कड़ाई से किया जाए, तो बेहतर है, अन्यथा ब्रह्मचर्य रहने वाला अनिवार्य नियम टूट सकता है। उपवास कई स्तर का हो सकता है, फल-दूध, शाकाहार, खिचड़ी-दलिया आदि। मसाला इन दिनों छोड़ देना चाहिए। बिना नमक एवं शक्कर का भोजन भी एक प्रकार का उपवास ही है। अपनी शारीरिक एवं मानसिक स्थिति के अनुरूप उपवास का क्रम बनाना चाहिए। नियम के क्रम में नौ दिवस तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन किया जाए। इसके अतिरिक्त तीन अन्य नियम हैं- 1. कोमल शैय्या का त्याग अर्थात् भूमि शयन या तख्त पर सोना, 2. अपनी शारीरिक सेवाएँ अपने हाथों करना, 3. हिंसा युक्त पदार्थों का त्याग, चमड़े की वस्तुओं का त्याग।

शक्ति पर्व के इस पावन अवसर पर महापूर्णाहुति की वेला में किया गया साधनात्मक पुरुषार्थ हमारे आत्मोत्कर्ष की दिशा में मील का पत्थर साबित हो सकता है। अवतरित शक्ति का एक अंश, उस ज्ञान को सक्रियता में बदल सकता है। जो शक्ति के अभाव में भारी बोझ बना हुआ है, जिसके नीचे हम दबे-पिसे जा रहे हैं। इस शक्ति का एक अंश उस भक्ति के लिये ईंधन का काम कर सकता है, जिसके अभाव में भक्ति कोरी भावुकता बनकर उपहास का पात्र बनी हुई है, इस शक्ति का एक अंश उस श्रद्धा को निष्ठा में बदलकर इसकी सार्थकता सिद्ध कर सकता है, जो शक्ति के अभाव में कुंठित होकर दम तोड़ देती है। आइए हम नवरात्रि के इस पर्व पर साधनात्मक पुरुषार्थ में संकल्पित भागीदारी लेकर इसे सफल बनाएँ।

संकल्प और साध्य जितना ऊँचा हो, उतनी ही गहराई तक स्वयं की सोई शक्तियाँ जागती हैं। साध्य की ऊँचाई ही तुम्हारी शक्ति का परिणाम है। आकाश को छूते वृक्षों को देखो। उनकी जड़ें अवश्य ही पाताल को छूती होंगी। तुम भी यदि आकाश को छूने की आशा और आकांक्षा से आन्दोलित हो जाओगे तो निश्चय ही जानो कि तुम्हारे गहरे से गहरे प्राणों में सोई हुई शक्तियाँ जाग जाएंगी। जितनी तुम्हारी अभीप्सा की ऊँचाई होती है, उतनी ही तुम्हारी शक्ति की गहराई भी होती है।

- आचार्य रजनीश

बोधकथा

एक हाथ की ताली

– संकलित

एक झेन फकीर हुआ। उसके पास, उसके मन्दिर में जहाँ वह ठहरता है, उसके वृक्ष के नीचे जहाँ वह विश्राम करता है, दूर-दूर से साधक आते हैं। उससे पूछते हैं, ध्यान की कोई विधि। वह उन्हें ध्यान की विधियाँ बताता है। वह उन्हें कोई सूत्र देता है कि जाकर इस पर ध्यान करो।

एक छोटा-सा बच्चा भी कभी-कभी उस वृक्ष के नीचे आकर बैठ जाता है। कभी उसके मंदिर में आ जाता है। बारह साल उसकी उम्र होगी। वह भी सुनता है बड़े ध्यान से बैठकर। बड़ी बातें! उसकी समझ में नहीं भी पड़ती हैं, पड़ती भी हैं, कुछ नहीं कहा जा सकता।

कई बार जिनको लगता है कि समझ में पड़ रहा है, उन्हें कुछ भी समझ नहीं पड़ता। और कई बार जिन्हें लगता है कि कुछ समझ में नहीं पड़ रहा है, उन्हें भी कुछ समझ में पड़ जाता है। बहुत बार ऐसा ही होता है कि जिसे लगता है, कुछ समझ में नहीं पड़ रहा है-इतना भी समझ में पड़ जाना कोई छोटी समझ नहीं है।

उस बच्चे ने देखा कि जब भी कोई साधक आता है, तो मंदिर का घंटा बजाता है, झुककर तीन बार नमस्कार करता है, झुककर विनम्र भाव से बैठता है; आदर से प्रश्न पूछता है, मंत्र लेता है, विदा होता है। फिर साधना करके, वापस लौटकर खबर देता है।

एक दिन सुबह वह बच्चा भी उठा, स्नान किया, फूल लिए हाथ में, आकर जोर से मंदिर का घंटा बजाया। झेन फकीर ने ऊपर आँख उठाकर देखा कि शायद कोई साधक आया। लेकिन देखा, वह छोटा बच्चा है, जो कभी-कभी आ जाता है। आकर तीन बार झुककर नमस्कार किया। फूल चरणों में रखे। हाथ जोड़कर कहा कि मुझे भी वह मार्ग बताएँ, जिससे मैं ध्यान को उपलब्ध हो सकूँ।

उस गुरु ने बहुत बड़े-बड़े साधकों को मार्ग बताया था, इस छोटे बच्चे को क्या मार्ग बताए! लेकिन विधि उसने पूरी कर दी थी, इसलिए इनकार किया नहीं जा सकता था।

उस गुरु ने कहा, तू एक काम कर, दोनों हाथ जोर से बजा। लड़के ने दोनों हाथ की ताली बजाई। गुरु ने कहा कि ठीक। आवाज बिल्कुल ठीक बजी। ताली तू बजा लेता है। अब एक हाथ नीचे रख ले। अब एक ही हाथ से ताली बजा। उस बच्चे ने कहा, बहुत कठिन मालूम पड़ता है। एक हाथ से ताली कैसे बजाऊँ? तो उस गुरु ने कहा, यही तेरे लिये मंत्र हुआ। अब इस पर तू ध्यान कर। और जब तुझे पता चल जाए कि एक हाथ से ताली कैसे बजेगी, तब तू आकर मुझे बता देना।

बच्चा गया। उस दिन उसने खाना भी नहीं खाया। वह वृक्ष के नीचे बैठकर सोचने लगा, एक हाथ की ताली कैसे बजेगी? बहुत सोचा, बहुत सोचा।

आप कहेंगे, कहाँ के पागलपन के सवाल को उसे दे दिया। सभी सवाल पागलपन के हैं। कोई भी सवाल कभी सोचा होगा, इससे कम पागलपन का नहीं रहा होगा।

कोई सोच रहा है, जगत को किसने बनाया? कोई सोच रहा है कि आत्मा कहाँ से आई? एक हाथ से ताली बजाने के सवाल से कोई ज्यादा अर्थपूर्ण सवाल हैं क्या?

लेकिन उस बच्चे ने बड़े सद्भाव से सोचा। रात उसे ख्याल आया कि मेंढक आवाज करते थे। उसने भी मेंढक की आवाज मुँह से की। और उसने कहा कि ठीक! यही आवाज होनी चाहिए एक हाथ की।

आकर सुबह घंटा बजाया। विनम्र भाव से बैठकर उसने आवाज की मुँह से, जैसे मेंढक टर्राते हों। और गुरु से कहा देखिए, यही है न आवाज, जिसकी आप बात करते थे? गुरु ने कहा कि नहीं, यह तो पागल मेंढक की आवाज है। एक हाथ की ताली की आवाज?

दूसरे दिन फिर सोचकर आया; तीसरे दिन फिर सोचकर आया। कुछ-कुछ लाया, रोज-रोज लाया। यह है आवाज, यह है आवाज। गुरु रोज कहता गया, यह भी नहीं, यह भी नहीं। वर्ष बीतने को पूरा हो गया। वह रोज खोजकर लाता रहा। कभी कहता कि झींगुर की आवाज,

कभी कहता कि वृक्षों के बीच से गुजरती हुई हवा की आवाज। कभी कहता कि वृक्षों से गिरते हुए पत्तों की आवाज। कभी कहता कि वर्षा में पानी की आवाज छप्पर पर। बहुत आवाजें लाया, लेकिन सब आवाजें गुरु इनकार करता गया। कहा कि नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं।

फिर उसने आना बंद कर दिया। फिर बहुत दिन गए वापस लौटा। घंटा बजाया, पैरों में फिर फूल रखे। हाथ जोड़कर चुपचाप पास बैठ गया। गुरु ने कहा, लाए कोई उत्तर? आवाज खोजी कोई? उसने सिर्फ आँखें उठाकर गुरु की तरफ देखा-मौन, चुप। गुरु ने कहा, ठीक है। यही है आवाज। तुझे पता चल गया, एक हाथ की आवाज कैसी होती है, एक हाथ की ताली कैसी होती है।

उसने कहा, अब आगे खोज करने को कुछ भी न बचा। एक-एक आवाज को, खोज को, आप इनकार करते गए, इनकार करते गए, इनकार करते गए। सब आवाजें गिरती गई। फिर सिवाय मौन के कुछ भी न बचा। पिछले महीने भर से मैं बिल्कुल मौन ही बैठा हूँ। कोई आवाज ही नहीं सूझती; कोई शब्द ही नहीं आता; मौन ही मौन; और अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। एक हाथ की आवाज जान पाया, नहीं जान पाया, मुझे पता नहीं। लेकिन इस मौन में मैंने जो देखा, जो जाना, शायद लोग उसी को परमात्मा कहते हैं।

✻

पृष्ठ 23 का शेष

विचार-सरिता

इस ज्ञान के लिये उत्तम अन्त:करण चाहिये। यह आत्मज्ञान तो सिंहनी का दूध है जो हर किसी पात्र में टिक नहीं सकता। सिंहनी के दूध को रोकना है तो पात्र भी स्वर्ण का होना जरूरी है। ऐसे ही आत्मज्ञान की अनुभूति के लिये अन्तर्मुखी होना जरूरी है। सांख्ययोग में करना कुछ नहीं है क्रिया का निषेध है और अक्रिया ही विधि है। बस बोध या स्मरण-मात्र पर्याप्त है।

आत्मस्वरूप में जग जाने के बाद यदि साधक ने यह जान लिया कि मैं शरीर, मन आदि नहीं हूँ, बल्कि शुद्ध चेतन्य आत्मा हूँ तो सारी भ्रान्तियाँ मिट जाती हैं व यही मोक्ष है। मोक्ष चित्त की एक अवस्था है जिसमें स्थिति होने पर जन्म-मरण की संसृति वाला जीव परमानंद का अनुभव करता है। भारत के मनीषियों ने विश्व को अध्यात्म में अनूठी दिशा दी है। यहाँ के ऋषि-मुनियों के अद्वैत सिद्धान्त के सामने समस्त धर्मावलम्बियों ने हार मानी है क्योंकि यह अनुभूत विज्ञान है। अद्वैत इस संपूर्ण सृष्टि को ईश्वर की कृति नहीं, अभिव्यक्ति मानता है, यह सारा फैलाव उसी का है। स्वर्ण से निर्मित आभूषणों में नाम व रूप का बाध करने पर स्वर्ण के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। ऐसे ही यह सृष्टि ही ईश्वर है। आत्मा, परमात्मा या ब्रह्म व जीव भिन्न नहीं अपितु एक ही तत्व है। प्रकृति व पुरुष दो नहीं एक ही तत्व है। जड़ व चेतन भी उसी एक की विभिन्न अवस्थाएँ मात्र हैं। श्रुति कहती है ''एको ब्रह्म, द्वितीय नास्ति'' जब एक ब्रह्म ही है तो दूसरा आया कहाँ से? सूत से बने वस्त्र में विभिन्न रंग व आकृतियाँ कितनी भी क्यों न हो उसमें सूत के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। इसी तत्वबोध के आधार पर उसने 'सर्वं खल्विदं ब्रह्मं,' 'अयमात्मा ब्रह्मं', 'ईशावास्यमिदं सर्वं' एवं 'विश्व बन्धुत्व' की उद्घोषणा की। यह मानव बुद्धि की न परिकल्पना है, न कोई सिद्धान्त अपितु प्रत्यक्ष दर्शन के आधार पर सुनिश्चित किया गया सार है, निष्कर्ष है, परम सत्य है।

इस स्थिति तक पहुँचने के लिये साधक के लिये आवश्यक है कि वह समस्त भोगों व विषय वासनाओं से मुक्त होकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व का अनुभव करे। विषयों के प्रति जो वासनाएँ हैं, आसक्ति है उसे छोड़ने का एक ही उपाय है- वह है वैराग्य। आत्म अनुभूति के लिये वैराग्य पहली शर्त है। इस शर्त को पूरी करने से ही होता है ज्ञान, व ज्ञान से ही मुक्ति होती है। यही समस्त वेदों, शास्त्रों व सद्ग्रन्थों का सार है।

ओम् शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

दिखावा घर का दिवाला

– *अमरसिंह अकली*

आज चारों तरफ होड़ लगी हुई है दिखावे की। दूसरे की बराबरी करने अथवा दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर नीचा दिखाकर समाज में बड़ा कहलाने की चाह यह खेल खिला रही है। मनुष्य अहंकार अथवा अज्ञानता के आवेश में यह सब कर रहा है। पारिवारिक उत्सवों में भी खुलकर दिखवा पनप चुका है। जिनके पास पर्याप्त धन है, उनका तो कार्य निभ जाता है पर जिनके यहाँ परिवार के भरण-पोषण जैसा ही जुगाड़ है वे दिखावा करेंगे तो कैसे कर पाएँगे। तब कर्ज लेकर प्रतिस्पर्धा में जो कूद पड़ते हैं, उनका भविष्य अंधकारमय हो जाता है। एक दिन की शोभा के चक्कर में उम्र भर का रोना ही कमाते हैं।

जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, मायरा, ढूंढ़, मौसर आदि कोई भी अवसर हो अनावश्यक रूप से बढ़-चढ़कर खर्च करने की जैसे रीत ही बन गई है। साज-सजावट, रोशनी, बैण्ड-बाजे, दुल्हे के लिए हाथी की सवारी, कव्वाल पार्टी, भोजन में तरह-तरह के व्यंजन, भिन्न-भिन्न प्रकार की शराब, कई तरह के मांसाहार आदि पर केवल देखा देखी में अनाप-शनाप खर्च किया जा रहा है। इच्छा तो शायद वाह-वाही लूटने की या समाज में प्रतिष्ठा पाने की रहती है पर परिणाम में स्वयं लुट जाते हैं। एक कहावत है-दिखावट, सजावट, बनावट और उसका परिणाम गिरावट। अत: लाभ इसी में है कि-तेते पाँव पसारिये, जेति लम्बी सौड़।

अनुमानत: समाज में एक बड़ा भाग ऐसे भारी खर्च हेतु कर्ज लेकर दूसरों की देखा-देखी में लगा है। कर्ज लेकर वह उत्सव तो निपटा लेते हैं मगर बाद में आर्थिक संकट के कारण पारिवारिक व्यवस्था डगमगा जाती है। पूरा परिवार जो हंसता-खिलखिलाता स्वर्गमय शान्ति का जीवन जी रहा था नासमझी में कर्ज लेकर उसके बोझ तले घुट-घुटकर नर्कमय जीवन जीने को मजबूर हो जाता है। दिन को चैन नहीं, रात को नींद नहीं। तब फिर अज्ञानवश एक और आफत गले डाल लेता है। शाम के समय शराब पीकर गम को भूले तो नींद आए। पर वह गम कितनी देर के लिये मिटा? होश आते ही वह कर्ज का भूत तो सवार ही रहेगा। शराब पीते-पीते अनेक बीमारियों को न्योता मिल जाता है। घुटते-घुटते एक दिन-राम नाम सत। अनेक घर ऐसे बर्बाद हुए हैं और होते जा रहे हैं। कर्ज लेने वाले ने तो घर, कर्ज के बोझ व जीवन से छुटकारा पा लिया पर परिवार का तो कर्ज व मर्ज ने पीछा नहीं छोड़ा। वह कर्ज ब्याज समेत बढते-बढते इतना भारी हो गया कि एक दिन बुजुर्गों के खून पसीने से प्राप्त आजीविका का साधन जमीन भी निलाम हो जाती है। अपनी संतान के लिये प्रेम से, कष्ट सहकर भी छोड़ी गई विरासत हाथ से निकल जाती है। केवल दिखावे के लिये दिवाला पा लिया। ठीक ही कहा है-

बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।
काम बिगारे आपणो, जग में होत हंसाय।।

इसका अर्थ यह भी न समझें कि पारिवारिक उत्सवों में कंजूस बनकर कुछ खर्च करें ही नहीं। सोच समझकर, बिना किसी दिखावे के अपनी क्षमतानुसार जहाँ जो योग्य है, वहाँ उतना खर्च किया जाए। मगर होडम-होड से बचना चाहिए। दूसरे लोग चाहे कंजूस कहें, बात बनाएं मगर समझदारी सहित अपनी क्षमता को आंक कर पारिवारिक उत्सवों का दायित्व निभाना चाहिए। इसी से जीवन में सुख-शान्ति रहती है। किसी के बहकावे में आकर दारूड़ा-मारूड़ा और डिस्को डांस का कुछ देर सुख भोग लें पर ऐसे फंदे में फंसकर दिवाले को ही आमंत्रण देना है।

संसार में सब तरह के स्वभाव वाले लोग होते हैं। कुछ लोग जीओ और जीने दो के स्वभाव के होते हैं, कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपना हित त्याग कर भी दूसरे का हित-साधन करते हैं। कुछ लोग अपने स्वार्थ में दूसरे का भी भला चाहते हैं तो कुछ लोग केवल अपना ही स्वार्थ पूरा करने में लगे रहते हैं। यही नहीं, कुछ लोग तो अपने

छोटे से स्वार्थ के लिये दूसरे का भारी नुकसान करने में भी नहीं चूकते। कई रात-दिन किसी का बुरा सोचने में ही व्यस्त रहते हैं तो कुछ दूसरे को मारने के लिये आत्मघात तक कर लेते हैं। वास्तविक देवता तुल्य व्यक्ति तो वह है जो समदर्शी बनकर; संयमी, सदाचारी व सेवाभावी बनकर जीवन जीते हैं। वे अन्य के दुख में साथ रहते हैं तो दूसरे की खुशी में उनको भी खुशी होती है।

आज हमारे युवक-युवतियाँ पश्चिमी देशों की नकल में अंधी दौड़ लगा रहे हैं। पश्चिमी देशों में तो जैसी जीवन प्रणाली थी, उसमें अब धीरे-धीरे बदलाव हो रहा है। समझदार लोग भारतीय जीवन-पद्धति की ओर मुड़ रहे हैं। लेकिन हमारे यहाँ उनकी नकल में अक्ल नहीं लगाई जा रही। उसके कारण स्वच्छन्दता पनप चुकी है, जिसके परिणाम नजर आते रहते हैं। त्याग, तपस्या, संयम, सदाचार, सेवा, परापेकारमय जीवन ही वास्तव में आदर्श जीवन है। पर आज धीरे-धीरे लोग, भोग, विलासी जीवन, अनाचार, फिजूल खर्ची, मौज मनाने में ही लगे हुए हैं। श्रम करना पसन्द नहीं पर मौज चाहिए। इन्द्रिय सुखों में जीवन बिताना ज्यादा पसंद आ रहा है और इसमें जब आर्थिक तंगी आती है तो घर वालों का गला घोंटते हैं। अपनी मौज और अपने भोग के लिये चोरी भी कर लेते हैं। इस प्रकार का स्वच्छन्द जीवन जीने वाले दिखावा पसन्द होते हैं और परिवार को कभी भी दिवाले की राह पर ला खड़ा कर सकते हैं।

फार्म-4 (नियम-8)

1. प्रकाशन स्थान	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
2. प्रकाशन अवधि	:	मासिक
3. मुद्रक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
नागरिकता	:	भारतीय
क्या विदेशी हैं	:	नहीं
पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
4. प्रकाशक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
नागरिकता	:	भारतीय
क्या विदेशी हैं	:	नहीं
पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
5. सम्पादक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
नागरिकता	:	भारतीय
क्या विदेशी हैं	:	नहीं
पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार व हिस्सेदार हों।	:	पूर्ण स्वामित्व-श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर

मैं एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

1-3-2020

लक्ष्मणसिंह

प्रकाशक

अपनी बात

किसी ने गलत समझ पकड़ रखी हो, गलत मार्ग पर चल रहा हो और अपनी उस गलत समझ अथवा उस अज्ञान को ज्ञान माने बैठा हो, उसे अगर ज्ञान दिया जाए, सही राह बताई जाए तो वह तुरन्त स्वीकार नहीं करेगा, उसे झटका लगेगा और सही समझ बताने वाले पर नाराज ही होगा।

एक आदमी आँख बन्द किए कागज की नाव पर बैठा सागर को पार करने उतर रहा है और अचानक, उसे कहा जाए-'जरा आँख खोल, क्या नासमझी कर रहा है, यह कागज की नाव है, कहीं भी डुबा देगी।' वह व्यक्ति कहने वाले को दुश्मन की तरह देखेगा। क्योंकि हो भले ही वह कागज की नाव लेकिन जब तक पता नहीं है, तब तक तो वह निश्चिंत है, तब तक तो वह नाव ही मान रहा है। उसको बताकर उसे झंझट में डाल दिया-यह बताकर की यह तो कागज की नाव है, डूबेगी। अब मुश्किल खड़ी हो गई। अब वह डरेगा, कम्पायमान होगा और परेशान होगा। वह बताने वाले पर नाराजगी भी प्रकट करेगा। सपना ही रहा हो भले पर भरोसा तो यह था कि ठीक है, पहुँच जाएंगे।

धन कमाने में व्यक्ति अपना जीवन गंवा रहा है और कोई संत कहता है कि मानव जीवन की सार्थकता धन से नहीं है, चाहे कितना ही धन कमा लो। अगले व्यक्ति को लगेगा कि मेरा अब तक गंवाया हुआ जीवन ही व्यर्थ हो गया। यह तो ऐसा हुआ जैसे मानो एक व्यक्ति किसी मंजिल तक पहुँचने के लिये पचास मील चलकर आया है और उसे कहा जा रहा हो कि-'वापस लौटो, यह तो रास्ता ही गलत है। पचास मील वापस जाओ, वहीं से चौराहे से बदलाहट कर दूसरा रास्ता पकड़ना है।'

पहले तो वह क्रोध में आएगा, नाराज होगा। क्योंकि उसे लगेगा कि बताने वाले ने उसकी पचास मील की यात्रा को ही व्यर्थ कर दिया है। फिर वापस जाना होगा पचास मील। एक बार तो वह बताने वाले पर भरोसा ही नहीं करेगा। अन्य लोगों से पूछेगा कि उसे ऐसा व्यक्ति मिल जाए जो कहे कि नहीं तुम ठीक चल रहे हो, तुम्हार रास्ता सही है।

जो हमारा अज्ञान दूर करने को ज्ञान की बात बताते हैं, ऐसे लोगों के पास जाने से लोग डरते हैं, उनसे भयभीत रहते हैं, दूर रहते हैं। ऐसे तो बहुत कम होंगे जो प्रबुद्ध व्यक्ति के पास, महापुरुष के पास पहुँचते हैं। इतना बड़ा संसार है, जब किसी महापुरुष का आगमन होता है, सत्य का आविर्भाव होता है, तो क्यों नहीं दौड़कर वहाँ पहुँचते? अनेक कारण वे खोज लेते हैं, न जाने के। पर जाने का कारण संसारी नहीं खोजते क्योंकि भीतर एक भय है कि इस तरह के आदमी के पास जाने का मतलब है कि अब तक तुम जो थे, तुमने जो भी किया, वह सब गलत था। तो अब तक का सारा जीवन व्यर्थ हुआ, बेकार गया? तुम मूढ़ थे, तुम नासमझ थे?

जब कोई ज्ञानी के पास जाता है तो अचानक उसका अज्ञान झटका खाता है, घबराहट होती है। ज्ञानी की प्रकाश-रेखा के समक्ष उसकी अंधेरी रेखा बिल्कुल प्रगट हो जाती है। इसीलिए व्यक्ति मित्रता अपने से ज्यादा अज्ञानियों की करता है। कोई साहसी, कोई शूरवीर ही ज्ञानियों के पास जाता है। इससे बड़ा कोई साहस नहीं है कि कोई नासमझ इस बात को समझने को राजी हो जाए कि अब तक जो मैं था वह गलत था, मेरी राह गलत थी, जिसे मैं ज्ञान समझ रहा था वह अज्ञान था, अब तक जिस रास्ते पर मैं चला, वह भ्रांति थी, अब मैं पुनः अ,ब,स से प्रारम्भ करने को राजी हूँ, तैयार हूँ। जो साहसी नहीं है, उसका मन समझाएगा कि इतने दिन चल लिए, थोड़े दिन और बचे हैं, अब क्यों परेशानी में पड़ते हो? थोड़े दिन और गुजार लो इसी रास्ते पर। पहुँचें, नहीं पहुँचें लेकिन पहुँचने की आशा तो बनी हुई है।

धन, सम्पदा, पद, प्रतिष्ठा की प्राप्ति तो है बाहर की

यात्रा। बाहर की तरफ तो, संसार की तरफ तो सभी जाते हैं। भीतर की तरफ, अंतर्यात्रा पर तो शूरवीर ही जाते हैं। बाहर खोज कर देख लिया, नहीं पाया परम तत्व। अपने ही मन की भ्रांतियाँ थी, अपने ही मन का फैलाव था। अब इसे समेट लेता हूँ, अब भीतर की यात्रा पर चलता हूँ, यह निर्णय साहस का निर्णय है और शूरवीर को ऐसा जानने की क्षमता जुटानी पड़ती है। जिसकी ऐसी प्रतीति सघन हो जाती है, उसके जीवन में सही की शुरुआत हो गई, सत्य की तरफ पहला कदम उठा। जिसने जान लिया कि मैं अज्ञानी हूँ, उसने ज्ञान के मंदिर की तरफ पहला कदम उठा लिया। संघ में अन्तरावलोकन पर जोर दिया जाता है, वह इसीलिए है कि हम पहचाने अपने आप को। कितना विचारों का, धारणाओं का, स्वार्थ का, कामनाओं का कचरा भरा पड़ा है। यह देखना प्रारम्भ होता है तो सफाई की शुरुआत होती है। चोर को देख लें तो चोर भाग छूटता है। अन्दर के अवगुणों के चोर को जितना जल्दी भगाएँ, उतना ही अच्छा है।

पृष्ठ 26 का शेष

भारतीय संस्कृति की श्रद्धास्पद परम्परा : चरण स्पर्श

अर्जुन ने वैसा ही किया। जब पितामह का ध्यान टूटा, तब अर्जुन ने उनके चरण-स्पर्श किए। पितामह ने गद्‌गद्‌ हो आशीर्वाद दिया-हे पार्थ! तुम विजयी बनो। कल के युद्ध में प्रथम चरण में शिखण्डी को धनुष-बाण देकर मेरे सामने कर दो। उसे देखकर मैं धनुष-बाण रख दूँगा और फिर तुम अपना काम बना लेना। इस तरह अर्जुन ने पितामह का चरण-स्पर्श किया और एक विशेष ऊर्जा प्राप्त कर लौटे।

मनु-स्मृति में चरण-स्पर्श की विधि का वर्णन है। उसमें बताया गया है कि चरण-स्पर्श करते हुए दाहिने हाथ की अंगुलियों से दाहिने पैर की अंगुलियाँ तथा बायें हाथ की अंगुलियों से बायें पैर की अंगुलियों का स्पर्श करना चाहिए। श्रेष्ठजन को भी दोनों हाथ बढ़ाकर चरण-स्पर्श करने वाले के सिर पर हाथ रखकर प्रसन्न मुद्रा में आशीर्वाद देना चाहिए। चरण-स्पर्श हमारी भारतीय संस्कृति में एक औपचारिक अभिवादन मात्र ही नहीं है, वरन् है स्नेह, सद्‌भावना का माध्यम। इसके अलावा शारीरिक क्रियाएँ, अंग संचालन तथा चित्त की प्रसन्नता की स्थिति की प्रधानता होने के कारण व्यक्ति को मानसिक-मलिनता, तनाव तथा आलस्य से मुक्ति मिलती है। व्यक्ति स्फूर्त, उत्साह और चैतन्य का अनुभव करता है। चरण-स्पर्श अपने आप में एक लघु व्यायाम है। साथ ही एक यौगिक-क्रिया भी है। यदि हम इस संस्कृति की परम्परा का पालन करें, तो हमें दुहरा लाभ होगा। हमारा स्वास्थ्य भी बना रहेगा और हिचक तथा लज्जा की स्थिति में उत्पन्न कुण्ठा से भी हम मुक्त हो जायेंगे। हमारा संस्कार तो यह कहता है कि विनम्र श्रद्धाभाव से हम युधिष्ठिर के बताये छह वृद्धजनों की सेवा में रत् रहकर उनकी आशीष प्राप्त करें, तो हमारी आयु, विद्या, यश, बल और धन-जन की निरंतर वृद्धि होगी।

शिविर-सूचना

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ का एक **दंपती शिविर** दिनांक 7.3.2020 से दिनांक 10.3.2020 तक **बाड़मेर** में गेहूं रोड़ पर स्थित **आलोक आश्रम** में होने जा रहा है।

दीपसिंह बेण्यांकाबास
शिविर कार्यालय प्रमुख,
(श्री क्षत्रिय युवक संघ)

अपने विकारों की होली जलाने हेतु हार्दिक शुभकामनाएं

विरेन्द्र सिंह तलावदा
Contractor
(M) 94143-96530

सागर सूखेंगे अब क्षण में गूँजेगी टँकार
खरी कसौटी पर बन्दे हैं चढने को तैयार
नेत्र तीसरा शिव का है खुल जाने के लिए।।

कम लागत में अधिक कमाये RO प्लान्ट

घरेलु एवं व्यवसायिक RO प्लान्ट, चिल्लर प्लान्ट, स्पेयर पार्टस, जार, केम्पर, फिल्टर, केमिकल, पम्प आदि हॉलसेल दर में उपलब्ध।

व्यापारिक पूछताछ हेतू सम्पर्क करें :-

अरविन्द एन्टरप्राईजेज
www.arvinderterprises.in
राय कॉलोनी रोड़, बाड़मेर (राज.)
ऑफिस : 7597501111, स्वरूपसिंह भाटी भाडली मो. 9462306565

अपने विकारों की होली जलाने हेतु हार्दिक शुभकामनाएं

नरेन्द्रसिंह नरधारी

समझ रहे हो हमको भोला जायेंगे हम हार
छुए कभी हैं दिल के तुमने जलते ये अंगार!
यह चिनगारी जली नहीं बुझ जाने के लिए।।

मेवाड़ ड्रग्स

(सभी प्रकार की दवाईयों के विक्रेता)

मेवाड़ ड्रग हाऊस

(पशु की दवाईयों के थोक विक्रेता)

दिलीप सिंह रूद - मो. 9829243812
कलेक्ट्री चौराहा, मीरानगर, चित्तौड़गढ़ (राज.)
E-mail : mewardrughouse@gmail.com

मार्च, सन् 2020
वर्ष : 57, अंक : 03

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह